

श्रीहरिः

भजन-संग्रह

(पाँचवाँ भाग)

(पत्र-पुष्प)

पत्रं पुष्पं फलं तोयं यो मे भक्त्या प्रयच्छति ।
तदहं भक्त्युपहृतमश्नामि प्रयतात्मनः ॥
(गीता ९ । २६)



मुद्रक तथा प्रकाशक
घनश्यामदास जालान,
गीताप्रेस, गोरखपुर

श्रीहरिः

भजन-संग्रह

(पाँचवाँ भाग)

(पत्र-पुष्प)

पत्रं पुष्पं फलं तोयं यो मे भक्त्या प्रयच्छति ।
तदहं भक्त्युपहृतमश्नामि प्रयतात्मनः ॥

(गीता ९ । २६)

मूल्य =) दो आना

श्रीहरिः

नम्र निवेदन

पत्र-पुष्पका यह चौथा संस्करण है। संत-महात्माओंके भजनों और अनुभवयुक्त वाणियोंके सामने इन तुकबन्दियोंका उतना ही मूल्य है जितना हीरेके सामने काँचका। पहला संस्करण प्रसिद्ध गायनाचार्य राम-भक्त श्रीविष्णुदिगम्बरजीके आग्रहसे उन्हींके प्रेसमें बम्बईमें छपा था, और पदोंपर ताल-सहित राग-रागिनियाँ भी उन्होंने ही बैठा दी थी। इसमें खड़ी बोली, व्रजभाषा, शेखावाटीकी बोली आदि कई बोलियोंके पद हैं और उनमें भिन्न-भिन्न प्रकारसे प्रयोग हुए हैं। व्रजभाषामें तालव्य 'श' 'ण' आदि नहीं बरते गये हैं तो शेखावाटीकी बोलीमें 'श' 'ण' बरते गये हैं। पाठकगण इन पदोंमें किसी भी बहाने श्रीभगवान्‌का नाम आया समझकर ही इन्हें पढ़ें। कविता, साहित्य या भक्ति-ज्ञानकी दृष्टिसे पढ़नेवालोंको तो सम्भवतः निराश ही होना पड़ेगा।

—लेखक

* श्रीहरिः *

अकारादि-क्रमसे विषय-सूची





श्रीविष्णु



सशङ्खचक्रं सकिरीटकुण्डलं सपीतवस्त्रं सरसीरुहेक्षणम् ।
सहारवक्षःस्थलकौस्तुभश्रियं नमामि विष्णुं शिरसा चतुर्भुजम् ॥

श्रीहरिः

भजन-संग्रह

पाँचवाँ भाग

(पत्र-पुष्प)

श्रीविष्णु-चरण-वन्दन

(१) राग जैजैवन्ती

शोभित चारों भुजा सुदर्शन,
शंख, गदा, सरसिजमें युक्त ।
रुचिर किरीट, सुभग पीताम्बर,
कमल-नयन शोभा-संयुक्त ॥
चिह्न विप्र-पदका वक्षस्‌पर,
कौस्तुभमणि, गल मञ्जुल हार ।
परम सुखद श्रीविष्णु-चरण,
वन्दन करता हूँ बारंबार ॥

(२) राग कल्याण

श्लोक—नारायणं हृषीकेशं गोविन्दं गरुडध्वजम् ।

वासुदेवं हरिं कृष्णं केशवं प्रणमाम्यहम् ॥

दोहा—श्रीगनपति गुरु सारदा, बंदौं बारंबार ।

परब्रह्मके रूप सब, भिन्न भिन्न आकार ॥ १ ॥

पुनि सुमिरौं गुरुवर-चरन, वांछित-फल-दातार ।

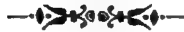
अतिदुस्तर भवसिंधुतें, जे पहुँचावहिं पार ॥ २ ॥

(३) राग भैरवी

वन्दौं विष्णु विश्वाधार ॥

लोकपति, सुरपति, रमापति, सुभग शान्ताकार ।
कमल-लोचन, कलुषहर, कल्याण-पद-दातार ॥
नील-नीरद-वर्ण, नीरज-नाभ, नभ अनुहार ।
भृगुलता-कौस्तुभ-सुशोभित हृदय मुक्ताहार ॥
शंख-चक्र-गदा-कमलयुत भुज विभूषित चार ।
पीत-पट-परिधान पावन अंग-अंग उदार ॥
शेष-शय्या-शयित, योगी-ध्यान-गम्य, अपार ।
दुःखमय भव-भय-हरण, अशरणशरण, अविकार ॥

प्रार्थना



(४) राग आसावरी

परम गुरु राम-मिलावनहार ।
अति उदार, मञ्जुल मङ्गलमय, अभिमत-फल-दातार ॥
टूटी फूटी नाव पड़ी मम भीषण भव-नद धार ।
जयति जयति जय देव दयानिधि, वेग उतारो पार ॥

(५) राग देशी खमाच

आयो चरन तकि सरन तिहारी ।
वेगि करो मोहि अभय, बिहारी !
जोनि अनेक फिर्यो भटकान्यो ।
अब प्रभु-पद छाड़ौं न मुरारी ! ॥
मो सम दीन, न दाता तुम सम ।
भली मिली यह जोरि हमारी ॥
मैं हौं पतित, पतितपावन तुम ।
पावन करु, निज बिरद सँभारी ॥

(६) राग गारा

जयति देव, जयति देव, जय दयालु देवा ।
परम गुरु, परम पूज्य, परम देव, देवा ॥
सब बिधि तव चरन सरन आइ परयो दासा ।
दीन, हीन, मति-मलीन, तदपि सरन-आसा ॥
पातक अपार किंतु दयाको भिखारी ।
दुखित जानि राखु सरन पाप-पुंज-हारी ॥
अवलोके सकल दोष छमा करहु स्वामी ।
ऐसा करु, जाते पुनि हौं न कुपथगामी ॥
पात्र हौं, कुपात्र हौं, भले अनधिकारी ।
तदपि हौं तुम्हारो, अब लेहु मोहि उबारी ॥
लोग कहत तुम्हरो सब, मनहु कहत सोई ।
करिय सत्य सोइ नाथ भव-भ्रम सब खोई ॥
मोरि ओर जनि निहारि, देखिय निज तनहीं ।
हठ करि मोहि राखिय हरि ! संतत तल पनहीं ॥
कहौं कहा बारबार जानहु सब भेवा ।
जयति, जयति, जय दयालु, जय दयालु देवा ॥

(७) राग बिलावल

प्रभु तव चरन किमि परिहरौं ।
ये चरन मोहि परम प्यारे, छिन न इनते टरौं ॥
जिन पदनकी अमित महिमा, वेद-सुर-मुनि कहैं ।
दास संतत करत अनुभव, रहत निसिदिन गहैं ॥
परसि जिनकौं सिला तेहि छिन बनी सुंदरि नारि ।
घरनि मुनिबरकी अहिल्या, सकौं केहि बिधि टारि ॥
इन पदन सम सरन असरन दूसरो कोउ नाहिं ।
होइ जो कोउ तुम बतावहु, धाइ पकरौं ताहि ॥
और बिधि नहि टरौं टारयो, होइ साध्य सु करौं ।
जलजगत मकरंद अलि ज्यों, मनहि चरनन्हि धरौं ॥

(८) राग देशी खमाच

बहु जुग बहुत जोनि फिरि हारो ।
अब तो एक भरोसो तिहारो ॥
जद्यपि कुटिल, कामरत, पापी ।
तदपि गुलाम सदा हौं तिहारो ॥
जाउँ कहाँ तव चरन बिहाई ।
लीन्हों प्रभु-पद-कमल-सहारो ॥

(९) राग बागेश्री

प्रभु ! तुम अपनो बिरद सँभारो ।
अधम-उधारन नाम धरायो
अब मत ताहि बिसारो ॥
मोसों अधिक अधम को जगमहँ,
पापिनमहँ सरदारो ।
ढूँढ़ ढूँढ़ जग अघ अति कीन्हे
गनत न आवै पारो ॥
मोरे अघकौं लिखत लिखावत,
चित्रगुप्त पचि हारो ।
तऊ न आयो अंत अघनको,
छाड़ी कलम बिचारो ॥
अबलौं अधम अनेक उधारे,
मो सों पल्लो डारो ।
राखो लाज नाम अपनेकी,
मत खोवो पतियारो ॥

(१०) राग तिलंग

अब हरि ! एक भरोसो तेरो ।
नहि कछु साधन ग्यान भगतिको,
नहि बिराग उर हेरो ॥
अघ ढोवत अघात नहि कबहूँ,
मन बिषयनको चेरो ।
इंद्रिय सकल भोगरत संतत,
बस न चलत कछु मेरो ॥
काम-क्रोध-मद-लोभ-सरिस अति
प्रबल रिपुनतें घेरो ।
परबस परयो, न गति निकसनकी,
जदपि कलेस घनेरो ॥
परखे सकल बंधु, नहि कोऊ
बिपदकालको नेरो ।
दीनदयाल दया करि राखहु,
भव-जल बूड़त बेरो ॥

(११) राग सोहनी

हे दयामय ! दीनबन्धो !! दीनको अपनाइये ।
डूबता बेड़ा मेरा मझधार पार लँघाइये ॥
नाथ ! तुम तो पतितपावन, मैं पतित सबसे बड़ा ।
कीजिये पावन मुझे, मैं शरणमें हूँ आ पड़ा ॥
तुम गरीबनिवाज हो, यों जगत सारा कह रहा ।
मैं गरीब अनाथ दुःख-प्रवाहमें नित बह रहा ॥
इस गरीबीसे छुड़ाकर कीजिये मुझको सनाथ ।
तुम सरीखे नाथ पा, फिर क्यों कहाऊँ मैं अनाथ ॥
हो तृषित आकुल अमित प्रभु ! चाहता जो बूँद नीर ।
तुम तृषाहारी अनोखे उसे देते सुधा-क्षीर ॥
यह तुम्हारी अमित महिमा सत्य सारी है प्रभो ! ।
किस लिये मैं रहा बंचित फिर अभीतक हे बिभो ! ॥
अब नहीं ऐसा उचित, प्रभु ! कृपा मुझपर कीजिये ।
पापका बन्धन छुड़ा नित-शान्ति मुझको दीजिये ॥

(१२) राग केदारा

प्रभु ! मेरो मन ऐसो है जावै ।
विषयनको विष सगरो उतरै,
पुनि नहि कबहूँ छावै ॥
बिनसै सकल कामना मनकी,
अनत न कतहूँ धावै ।
निरखत निरत निरंतर माधुरि,
स्याम मुरति सुख पावै ॥
कामी जिमि कामिनि-सँग चाहै,
लोभी धन मन लावै ।
तिमि अविरत निज प्रियतमकी सुधि,
छिन इक नहिं बिसरावै ॥
ममता सकल जगतकी छूटै,
मधुर स्याम छवि भावै ।
तव आनन-सरोज-रस चाखन
मन मधुकर बनि जावै ॥

(१३) राग केदारा

चहौं बस एक यही श्रीराम ।
अबिरल अमल अचल अनपाइनि
प्रेम-भगति निष्काम ॥
चहौं न सुत-परिवार, बंधु-धन,
धरनी, जुवति ललाम ।
सुख-बैभव उपभोग जगतके,
चहौं न सुचि सुरधाम ॥
हरि-गुन सुनत सुनावत कबहूँ,
मन न होइ उपराम ।
जीवन-सहचर साधु-संग सुभ,
हो संतत अभिराम ॥
नीरदनील नवीन बदन अति
सोभामय सुखधाम ।
निरखत रहौं बिस्मय निसिदिन,
छिन न लहौं बिस्राम ॥

(१४) राग आसावरी

मेरे एक राम-नाम आधार ।
ढूँढ थक्यो पर मिल्यो न दूजो, भीर परेको यार ॥
देखे सुने अनेक महीपति, पंडित, साहूकार ।
जद्यपि नीति-धरम-धनसंजुत, नहिं अस परम उदार ॥
मात पिता, भ्राता, नारी, सुत, सेवक, बंधु अपार ।
बिपदकालमहँ कोउ न संगी, स्वारथमय संसार ॥
करि करुना दयालु गुरु दीन्हों, राम-नाम सुखसार ।
दुस्तर भवसागरमहँ अटक्यो बेरो उतर्यो पार ॥

(१५) राग केदारा

हुआ अब मैं कृतार्थ महाराज ।
दिया चरन आश्रय गरीबको, धन्य ! गरीबनिवाज ॥
घूमा नभ-जल-पृथिवीतलपर, धरे नित नये साज ।
मिली न शान्ति कहीं प्रभु ! ऐसी, जैसी मुझको आज ॥
विविध रूपसे पूजा मैंने कितना देव-समाज ।
कितने धनी उदार मनाये, हुआ न मेरा काज ॥
दुखसमुद्रमें डूब रहा था मेरा भग्न जहाज ।
चरण-किनारा मिला अचानक, छूटा दुखका राज ॥

(१६) राग खमाच

(मारवाड़ी बोली)

नाथ मैं थारोजी थारो !

चोखो, बुरो, कुटिल अरु कामी, जो कुछ हूँ सो थारो ॥
बिगड़यो हूँ तो थारो बिगड़यो, थे ही मनै सुधारो ।
सुधरयो तो प्रभु सुधरयो थारो, थाँ सूँ कदे न न्यारो ॥
बुरो, बुरो, मैं भोत बुरो हूँ, आखर टाबर थारो ।
बुरो कुहाकर मैं रह जास्यूँ, नाँव बिगड़सी थारो ॥
थारो हूँ, थारो ही बाजूँ, रहस्यूँ थारो, थारो ! ! ।
आँगळियाँ नुहँ परै न होवै, या तो आप बिचारो ॥
मेरी बात जाय तो जाओ, सोच नहीं कछु म्हारो ।
मेरे बडो सोच यो लाग्यो, बिरद लाजसी थारो ॥
जचै जिसतराँ करो नाथ ! अब, मारो, चाहे त्यारो ।
जाँघ उघाड़याँ लाज मरोगा, ऊँडी बात बिचारो ॥

(१७) राग पीलू

(मारवाड़ी बोली)

नाथ ! थारै सरण पड़ी दासी * ।
(मोय) भवसागरसें त्यार काटओ जनम मरण फाँसी ॥
नाथ ! मैं भोत कष्ट पाई ।
भटक भटक चौरासी जूणी मिनख-देह पाई ।
मिटाओ दुःखाँकी रासी ॥
नाथ ! मैं पाप भोत कीना ।
संसारी भोगाँकी आसा दुःख भोत दीना ।
कामना है सत्यानासी ॥
नाथ ! मैं भगति नहीं कीनी ।
झूठा भोगाँकी तृसनामें उम्मर खो दीनी ।
दुःख अब मेटो अबिनासी ॥
नाथ ! अब सब आसा टूटी ।
(थारे) श्रीचरणाँकी भगति एक है संजीवन बूटी ।
रहूँ नित दरसणकी प्यासी ॥

---

* सांसारिक तापोंसे पीड़ित, संसारसे निराश होकर श्रीहरिके चरणोंकी आश्रित एक अबलाकी प्रार्थना ।

(१८) राग भीमपलासी
(मारवाड़ी बोली)

नाथ मनें अबकी बार बचाओ । टेक ।
फँस्यो आय मैं भँवर-जाळ,निकलणकी बाट बताओ ।
रस्तो भूल्यो, मिल्यो अँधेरो, मारग आप दिखाओ ।।
दुखियानैं उद्धार करणको, थारै घणो उमाओ ।
मेरै जिस्यो दुखी कुण जग मैं, प्रभुजी ! आप बताओ ।।
भोत कष्ट मैं भुगत्या स्वामी, अब तो फंद कटाओ ।
धीरज गई, धरम भी छूट्यो, आफत आप मिटाओ ।।
आरत भोत हो रह्यो प्रभुजी, अब मत बार लगाओ ।
करो माफ तकसीर दासकी, सरण मनें बकसाओ ।।

(१९) राग जोशी
(मारवाड़ी बोली)

नाथ ! थारै सरणै आयोजी ।
जचै जिसतराँ खेल खिलाओ, थे मन-चायो जी ।।
बोझो सभी ऊतर्‌यो मनको, दुख बिनसायो जी ।
चिंता मिटी, बडे चरणाँको स्हारो पायो जी ।।
सोच फिकर अब सारो थारै ऊपर आयो जी ।
मैं तो अब निस्चिन्त हुयो अंतर हरखायो जी ।।
जस-अपजस सब थारो, मैं तो दास कुहायो जी ।
मन-भँवरो थारै चरण-कमलमें जा लिपटायो जी ।।

(२०) राग मल्लार

सुन्यो तेरो पतितपावन नाम !
अजामिल[१]-से पतितकों तैं दियो अपनो धाम ॥
ब्याध[२]-खग[३]-मृग[४] जे रहे नित धरमतें उपराम ।
किये पावन अति पतित ते, भये पूरनकाम ॥
कठिन कलिके काल अपि तारे अनेक कुठाम ।
धरमहीन, मलीन, पातक निरत आठों जाम ॥
पाप करत उछाह जुत, मम मन न लीन्ह बिराम ।
तदपि अजहुँ न मोहि तारयो, किमि बिसारयो नाम ॥

१ अजामिलने मरते समय पुत्रके संकेतसे 'नारायण' नाम उच्चारण किया था, जिससे वह परमधामको गया ।

२ व्याधने भगवान् श्रीकृष्णके पैरमें बाण मारा था, उसकी परमगति हुई ।

३ जटायुकी कथा श्रीरामायणमें प्रसिद्ध है ।

४ बानर, भालु, गजराज आदि ।

(२१) राग शंकरा

दीनबन्धो ! कृपासिन्धो ! कृपाबिन्दू दो प्रभो !
उस कृपाकी बूँदसे फिर बुद्धि ऐसी हो प्रभो ॥
वृत्तियाँ द्रुतगामिनी हो जा समावें नाथमें ।
नदी-नद जैसे समाते हैं सभी जलनाथमें ॥
जिस तरफ देखूँ उधर ही दरस हो श्रीरामका ।
आँख भी मूँदूँ तो दीखै मुखकमल घनश्यामका ॥
आपमें मैं आ मिलूँ प्रभु ! यह मुझे वरदान दो ।
मिलती तरंग समुद्रमें जैसे, मुझे भी स्थान दो ॥

छूट जावें दुःख सारे, क्षुद्र सीमा दूर हो ।
द्वैतकी दुविधा मिटे, आनन्दमें भरपूर हो ॥
आनन्द सीमारहित हो, आनन्द पूर्णानन्द हो ।
आनन्द सत आनन्द हो, आनन्द चित आनन्द हो ॥
आनन्दका आनन्द हो, आनन्दमें आनन्द हो ।
आनन्दको आनन्द हो, आनन्द ही आनन्द हो ॥

(२२) राग भीमपलासी

नाथ ! अब कैसे हो कल्याण ?
प्रभु-पद-पंकज-विमुख निरंतर रहते पामर प्राण ।
परसुखकातर महामलिन मन चाहत पद निर्वाण ॥
सत्य, अहिंसा, प्रेम, दया सब कर गये दूर प्रयाण ।
लगा हृदयमें द्वेष-घृणा-हिंसाका बेधक बाण ॥
भेदबुद्धिसे भरा हृदय सब भाँति हुआ पाषाण ।
आत्मभावना भूल वैरपर सदा चढ़ाता शाण ॥
लगा कामना-भूत भयानक, मिटा धर्म-परिमाण ।
उभयभ्रष्ट हुआ बनकर अब पशु बिनु पूँछ विषाण ॥
श्रुति--स्मृतिकी करता अवहेला, पढ़ता नहीं पुराण ।
प्रभो ! पतित इस अधम दीनका तुम्हीं करो अब त्राण ॥

(२३) राग आसावरी

एक लालसा मनमहँ धारौं ।
बंसीबट, कालिंदीतट, नटनागर नित्य निहारौं ॥
मुरली-तान मनोहर सुनि-सुनि तन-सुधि सकल बिसारौं ।
पल-पल निरखि झलक अँग अंगनि पुलकित तन मन वारौं
रिझऊँ स्याम मनाइ गाइ गुन गुंज-माल गर डारौं ।
परमानंद भूलि जग सगरौ स्यामहिं स्याम पुकारौं ॥

(२४) राग जैजैवन्ती

कर प्रणाम तेरे चरणोंमें लगता हूँ अब जगके काज ।
पालन करनेको आज्ञा तव मैं नियुक्त होता हूँ आज ॥
अंतरमें स्थित रहकर मेरे बागडोर पकड़े रहना ।
निपट निरंकुश चंचल मनको सावधान करते रहना ॥
अन्तर्यामीको अन्तःस्थित देख सशङ्कित होवे मन ।
पाप-वासना उठते ही हो नाश लाजसे वह जल-भुन ॥
जीवोंका कलरव जो दिनभर सुननेमें मेरे आवे ।
तेरा ही गुणगान जान मन प्रमुदित हो अति सुख पावे ॥
तू ही है सर्वत्र व्याप्त हरि ! तुझमें यह सारा संसार ।
इसी भावनासे अन्तरभर मिलूँ सभीसे तुझे निहार ॥
प्रतिपल निज इन्द्रियसमूहसे जो कुछ भी आचार करूँ ।
केवल तुझे रिझानेको, बस, तेरा ही व्यवहार करूँ ॥

(२५) राग आसावरी

मोकौं कछू न चहिये राम ।
तुम बिन सब ही फीके लागैं, नाना सुख धन धाम ॥
सुंदरि, संतति, सेवक, सब गुन, बुधि बिद्या भरपूर ।
कीरति, कला, निपुनता, नीती, इनकौं रखिये दूर ॥
आठ सिद्धि, नौ निद्धि आपनी और जननकौं दीजै ।
मैं तो चेरो जनम-जनमको, कर धरि अपनो कीजै ॥

(२६) राग आसावरी

खड़ा अपराधी प्रभुके द्वार !
न्याय चाहता, क्षमा नहीं, दो दण्ड दोष अनुसार ॥१॥
अर्थ-दण्ड देना चाहो तो करो स्वार्थ सब छार ।
रहने मत दो कुछ भी इसके 'अपना' 'मेरा' कार ॥२॥
क़ैद अगर करना चाहो तो प्रेम-बेड़ियाँ डार ।
रक्खो बाँध इसे नित निज चरणोंके कारागार ॥३॥
निर्वासित करना चाहो तो लूटो घर-संसार ।
पहुँचा दो सत्वर दोषीको भव-समुद्रके पार ॥४॥
कभी न आने दो फिर वापस, मरने दो बेकार ।
बह जाने दो इसे वहाँ सच्चिदानंदकी धार ॥५॥

(२७) राग भैरवी

होगा कब वह सुदिन समय शुभ,
मायावी मन बनकर दीन ।
मोहमुक्त हो हो जायेगा,
पावन प्रभु-चरणोंमें लीन ॥ १ ॥
कब जगकी झूठी बातोंसे,
हो जावेगी घृणा इसे ।

कब समझेगा उसे भयानक,
मान रहा रमणीय जिसे ॥ २ ॥
कब गुरु-चरणोंकी रजको यह,
निज मस्तकपर धारेगा।
काम-क्रोध-लोभादि वैरियोंको,
कब हठसे मारेगा ॥ ३ ॥
पुण्यभूमि ऋषिसेवितमें कब,
होगा इसका निर्जन-वास।
गंगाकी पुनीत धारासे
कब सब अघका होगा नास ॥ ४ ॥
कब छोड़ेंगी सबल इन्द्रियाँ
अपने विषयोंमें रमना।
कब सीखेंगी उलटी आकर
अन्तरमें उसके जमना ॥ ५ ॥
कब साधनके प्रखर तेजसे
सारा तम मिट जायेगा।
कब मन विषयविमुख हो हरिकी
विमल भक्तिको पायेगा ॥ ६ ॥

धन-जन-पदकी प्रबल लालसा
कष्टमयी कब छूटेगी।
मान-बड़ाई, 'मैं मेरे' की
फाँसी कब यह टूटेगी ॥ ७ ॥
कब यह मोह-स्वप्न छूटेगा,
कब प्रपंचका होगा बाध।
परवैराग्य प्रकट कब होगा,
कब सुख होगा इसे अगाध ॥ ८ ॥
कब भवभयके कारण मिथ्या
अहंकारका होगा नास।
कब सच्चा स्वरूप दीखेगा,
छूट जायगा देहाध्यास ॥ ९ ॥
कब सबके आधार एक भूमा-
सुखका मुख दीखेगा।
कब यह सब भेदोंमें नित्य
अभेद देखना सीखेगा ॥१०॥
कब प्रतिबिम्ब बिम्ब होगा,
कब नहीं रहेगा चित-आभास।
निजानन्द निर्मल अज अव्ययमें
कब होगा नित्य निवास ॥११॥

(२८) राग आसावरी

बना दो विमलबुद्धि भगवान ।
तर्कजाल सारा ही हर लो, हरो सुमति-अभिमान ।
हरो मोह, माया, ममता, मद, मत्सर, मिथ्या मान ॥
कलुष काम-मति, कुमति हरो, हे हरे ! हरो अज्ञान ।
दम्भ, दोष, दुर्नीति हरणकर करो सरलता दान ॥
भोग-योग, अपवर्ग-स्वर्गकी हरो स्पृहा बलवान ।
चाकर करो चारु चरणोंका नित ही निज जन जान ॥
भर दो हृदय भक्ति-श्रद्धासे, करो प्रेमका दान ।
कभी न करो दूर निज पदसे, मेटो भवका भान ॥

(२९) राग पहाड़ी

(मारवाड़ी बोली)

अब कित जाऊँजी, हार कर सरणै थाँरै आयो ॥
जबतक धनकी धूम रही घर भायाँ सेती छायो ।
साला-साढू भोत नीसरया, नेड़ोइ साख बतायो ॥
अणगिणतीका बण्या भायला, प्रेम घणो दरसायो ।
एक एकसें बढ़कर बोल्यो, एकहि जीव बतायो ॥

सभा-समाज, पंच पंचायत, ऊँचो भोत बिठायो ।
वाह्-वाहकी धूम मचाई, स्याणो घणो बतायो ॥
घरका सभी, साख सबहीसूँ, सबहीकै मन भायो ।
बाताँ सेती सभी पसीनै ऊपर खून बुहायो ॥
लक्ष्मी माता करी कृपा जद, चंचल रूप दिखायो ।
माया लई समेट, भरमको पड़दो दूर हटायो ॥
मात-पितानैं खारो लाग्यो, भायाँ मान घटायो ।
साला-साढू सभी बीछड़्या, कोइ न नेड़ो आयो ॥
'एक जीवका' भोत भायला, एक न आडो आयो ।
उलटी हँसी उडाई जगमैं, बेवक़ूफ़ बतलायो ॥
टूट्यो प्रेम, छुट्यो सँग सबसूँ, सब कोई छिटकायो ।
नाक चढाकर मुँहसूँ बोल्या, सब जग हुयो परायो ॥
सुखको रूप समझकर जगनें, भोत दिना भरमायो ।
खुल गइ पोल, रूप सगलाँको असली चौड़ै आयो ॥
मिटी भरमना सारी, थारै चरणाँ चित्त लगायो ।
नाथ ! अनाथ पतित पापीनें तुरत सनाथ बणायो ॥

(३०) राग आसावरी

नाथ अब लीजै मोहि उबार !
कामी, कुटिल, कठिन कलि-
कवलित, कुत्सित कपटागार ।
मोही, मुखर, महा मद-मर्दित,
मंद, मलिन-आचार ॥
वलयित-विषय, विताड़ित, विचलित,
विकसित विविध विकार ।
दीन, दुखी, दुरदृष्ट, दुरत्यय,
दुर्गत दुर्गुण-भार ॥
पंकिल प्रचुर, पतित, परिपंथी,
निरपत्रप, निःसार ।
निःस्व, निखिल निगमागम वर्जित,
निगडित नित गृह-दार ॥
दीनाश्रय ! तव विरद विपत्ति-
विदारण श्रुति-विस्तार ।
सुनत सुयश शुचि सो अब
मैं आगत अघहारी-द्वार ॥

(३१) राग बहार

सनातन सत-चित-आनँद रूप ।
अगुण, अज, अव्यय, अलख, अनूप ॥
अगोचर, आदि, अनादि, अपार ।
विश्व-व्यापक, विभु, विश्वाधार ॥
न पाता जिनकी कोई थाह ।
बुद्धि-बल हो जाते गुमराह ॥
संत श्रद्धालु, तर्क कर त्याग ।
सदा भजते मनके अनुराग ॥ २ ॥
समझकर विषवत् सारे भोग ।
त्याग, हो जाते स्वस्थ निरोग ॥
एक, बस, करते प्रियकी चाह ।
विचरते जगमें बेपरवाह ! ॥ ३ ॥
धरा, धन, धाम, नाम, आराम ।
सभी कुछ राम विश्व-विश्राम ॥
देखते सबमें ऐसे भक्त ।
सतत रहते चिन्तन-आसक्त ॥ ४ ॥
प्रेम-सागरकी तुंग तरंग ।
बाँध मर्यादाका कर भंग ॥
बहा ले जाती जब श्रुति-धार ।
संत तब करते प्रेम-पुकार ॥ ५ ॥

प्रेमवश विह्वल हो श्रीराम ।
भक्त-मन-रञ्जन अति अभिराम ॥
दिव्य मानव-शरीरवर धार ।
अनोखा, लेते जग अवतार ॥ ६ ॥
मदन-मन-मोहन, मुनि-मन-हरण ।
सुरासुर सकल विश्व सुख-करण ॥
मधुर मञ्जुल मूरति द्युतिमान ।
विविध क्रीड़ा करते भगवान ॥ ७ ॥
दयावश करते जग-उद्धार ।
प्रेमसे, तथा किसीको मार ॥
विविध लीला विशाल शुचि चित्र ।
अलौकिक सुखकर सभी विचित्र ॥ ८ ॥
जिन्हें गा-सुनकर मोहागार ।
सहज होते भव-वारिधि पार ॥
तोड़ माया-बन्धन जग-जाल ।
देखते 'सीय-राम' सब काल ॥ ९ ॥
वही सुन्दर मृदु युगल-स्वरूप ।
दिखाते रहो राम रघु-भूप ! ॥
'सकल जग सीय-राममय' जान ।
करूँ सबको प्रणाम, तज मान ॥१०॥

(३२) राग भैरवी

हे निर्गुण ! हे सर्वगुणाश्रय !
हे निरुपम ! हे उपमामय !
हे अरूप ! हे सर्वरूपमय !
हे शाश्वत ! हे शान्तिनिलय ! ॥ १ ॥
हे अज ! आदि ! अनादि ! अनामय !
हे अनन्त ! हे अविनाशी !
हे सच्चित-आनन्द, ज्ञानघन,
द्वैतहीन, घट-घट-वासी ! ॥ २ ॥
हे शिव, साक्षी, शुद्ध, सनातन,
सर्वरहित, हे सर्वाधार !
हे शुभमन्दिर, सुन्दर, हे शुचि,
सौम्य, साम्यमति, रहितविकार ! ॥३॥
हे अन्तर्यामी ! अन्तरतम,
अमल, अचल, हे अकल, अपार !
हे निरीह, हे नर-नारायण,
नित्य, निरञ्जन, नव, सुकुमार ! ॥४॥
हे नव-नीरद-नील नराकृति,
निराकार, हे नीराकार !

हे समदर्शी, संत-सुखाकर,
हे लीलामय प्रभु साकार ! ॥ ५ ॥
हे भूमा, हे विभु, त्रिभुवनपति,
सुरपति, मायापति, भगवान !
हे अनाथपति, पतित-उधारन,
जन-तारन, हे दयानिधान ! ॥ ६ ॥
हे दुर्बलकी शक्ति, निराश्रयके
आश्रय, हे दीनदयाल !
हे दानी हे प्रणतपाल,
हे शरणागतवत्सल, जनपाल !॥ ७ ॥
हे केशव ! हे करुणासागर !
हे कोमल, अति सुहृद महान !
करुणा कर अब उभय अभय-
चरणोंमें हमें दीजिये स्थान ॥ ८ ॥
सुर-मुनि-वन्दित कमलानन्दित
चरण-धूलि तव मस्तक धार ।
परम सुखी हम हो जायँगे,
होंगे सहज भवार्णव पार ॥ ९ ॥

(३२) राग भीमपलासी

हे नाथ ! तुम्हीं सबके मालिक,
तुम ही सबके रखवारे हो ।
तुम ही सब जगमें व्याप रहे,
विभु ! रूप अनेकों धारे हो ॥
तुम ही नभ, जल, थल, अग्नि तुम्हीं,
तुम सूरज-चाँद-सितारे हो ।
यह सभी चराचर है तुममें,
तुम ही सबके ध्रुवतारे हो ॥

× × ×

हम महामूढ़ अज्ञानीजन,
प्रभु ! भवसागरमें डूब रहे ।
नहिं नेक तुम्हारी भक्ति करें,
मन मलिन विषयमें खूब रहे ॥
सत्सङ्गतिमें नहिं जायँ कभी,
खल-सङ्गतिमें भरपूर रहे ।
सहते दारुण दुख दिवस-रैन,
हम सच्चे सुखसे दूर रहे ॥

× × ×

तुम दीनबन्धु, जगपावन हो,
हम दीन, पतित अति भारी हैं ।
है नहीं जगतमें ठौर कहीं,
हम आये शरण तुम्हारी हैं ॥
हम पड़े तुम्हारे हैं दरपर,
तुमपर तन-मन-धन वारे हैं ।
अब कष्ट हरो हरि, हे हमरे,
हम निंदित निपट दुखारे हैं ॥

× × ×

इस टूटी-फूटी नैयाको
भवसागरसे खेना होगा ।
फिर निज हाथोंसे नाथ !
उठाकर पास बिठा लेना होगा ॥
हे अशरणशरण, अनाथनाथ,
अब तो आश्रय देना होगा ।
हमको निज चरणोंका निश्चित
नित दास बना लेना होगा ॥

(३४) राग आसावरी

बना दो बुद्धिहीन भगवान ।
तर्क-शक्ति सारी ही हर लो, हरो ज्ञान-विज्ञान ।
हरो सभ्यता, शिक्षा, संस्कृति, नये जगतकी शान ॥
विद्या-धन-मद हरो, हरो हे हरे ! सभी अभिमान ।
नीति भीतिसे पिंड छुड़ाकर करो सरलता-दान ॥
नहीं चाहिये भोग-योग कुछ, नहीं मान-सम्मान ।
ग्राम्य, गँवार बना दो, तृणसम दीन, निपट निर्मान ॥
भर दो हृदय भक्ति-श्रद्धासे करो प्रेमका दान ।
प्रेमसिन्धु ! निज मध्य डुबाकर मेटो नामनिशान ॥

(३५) राग बिहाग

मोहन, राखु पद-रजतरै ।
सुर-सुरेंद्र-विधि-पद नहिं चहिये,
डारहु मुकुति परै ।
जग-सुखके सब साज सँभारहु,
इनतें दुख न टरै ॥
सुख-दुख लाभ-हानि जगकी सम,
नैकौ मन न जरै !
बिनु विराम छबिधाम निरखि
तन-मन नित प्रेम गरै ॥

(३६) राग भैरवी

हे स्वामी ! अनन्य अवलम्बन,
हे मेरे जीवन-आधार !
तेरी दया अहैतुक पर
निर्भर कर आन पड़ा हूँ द्वार ॥ १ ॥
जाऊँ कहाँ, जगतमें तेरे
सिवा न शरणद है कोई ।
भटका, परख चुका सबको,
कुछ मिला न, अपनी पत खोई ॥ २ ॥
रखना दूर, किसीने मुझसे
अपनी नजर नहीं जोड़ी ।
अति हित किया सत्य समझाया,
सब मिथ्या प्रतीति तोड़ी ॥ ३ ॥
हुआ निराश, उदास, गया
विश्वास जगतके भोगोंका ।
जिनके लिये खो दिया जीवन,
पता लगा उन लोगोंका ॥ ४ ॥
अब तो नहीं दीखता मुझको
तेरे सिवा सहारा और ।
जल-जहाजका कौआ जैसे
पाता नहीं दूसरी ठौर ॥ ५ ॥

करुणाकर ! करुणा कर सत्वर
अब तो दे मंदिर-पट खोल ।
बाँकी झाँकी नाथ ! दिखाकर
तनिक सुना दे मीठे बोल ॥ ६ ॥
गूँज उठे प्रत्येक रोममें
परम मधुर वह दिव्य स्वर ।
हृत्-तंत्री बज उठे साथ ही
मिला उसीमें अपना सुर ॥ ७ ॥
तन पुलकित हो, सु-मन-जलजकी
खिल जायें सारी कलियाँ ।
चरण मृदुल बन मधुप उसीमें
करते रहें रंगरलियाँ ॥ ८ ॥
हो जाऊँ उन्मत्त, भूल जाऊँ
तन-मनकी सुधि सारी ।
देखूँ फिर कण-कणमें तेरी
छबि नव-नीरद-घन प्यारी ॥ ९ ॥
हे स्वामिन् ! तेरा सेवक बन
तेरे बल होऊँ बलवान ।
पाप-ताप छिप जायें हो
भयभीत मुझे तेरा जन जान ॥१०॥

(३७) राग भीमपलासी

पतित नहीं जो होते जगमें,
कौन पतितपावन कहता ?
अधमोंके अस्तित्व बिना
अधमोद्धारण कैसे कहता ? ॥ १ ॥
होते नहीं पातकी, 'पातकि-तारण'
तुमको कहता कौन ?
दीन हुए बिन, दीनदयालो !
दीनबंधु फिर कहता कौन ? ॥ २ ॥
पतित, अधम, पापी, दीनोंको
क्योंकर तुम बिसार सकते ।
जिनसे नाम कमाया तुमने,
क्योंकर उन्हें टाल सकते ॥ ३ ॥
चारों गुण मुझमें पूरे, मैं
तो विशेष अधिकारी हूँ ।
नाम बचानेका साधन हूँ,
यों भी तो उपकारी हूँ ॥ ४ ॥
इतनेपर भी नाथ ! तुम्हें
यदि मेरा स्मरण नहीं होगा ।
दोष क्षमा हो, इन नामोंका
रक्षण फिर क्योंकर होगा ? ॥ ५ ॥

सुन प्रलापयुत पुकार, अब तो
करिये नाथ ! शीघ्र उद्धार ।
नहीं, छोड़िये नामोंको,
यों कहनेको होता लाचार ॥ ६ ॥
जिसके कोई नहीं, तुम्हीं
उसके रक्षक कहलाते हो ।
मुझे नाथ अपनानेमें फिर
क्यों इतना सकुचाते हो ? ॥ ७ ॥
नाम तुम्हारे चिर सार्थक हैं
मेरा दृढ़ विश्वास यही ।
इसी हेतु, पावन कीजै प्रभु !
मुझे कहींसे आस नहीं ॥ ८ ॥
चरणोंको दृढ़ पकड़े हूँ, अब
नहीं हटूँगा किसी तरह ।
भले, फेंक दो, नहीं सुहाता
अगर पड़ा भी इसी तरह ॥ ९ ॥
पर यह रखना स्मरण नाथ !
जो यों दुतकारोगे हमको ।
अशरणशरण, अनाथनाथ, प्रभु
कौन कहेगा फिर तुमको ? ॥१०॥

(३८) राग भैरवी

सकुच भरे अधखिले सुमनमें
छिपकर रहता प्रेम-पराग ।
नव-दर्शनमें मुग्ध प्राणका
होता मूक मधुर अनुराग ॥
भय-लज्जा, संकोच-सहम,
सहसा वाणीका निपट निरोध ।
वाचा-रहित, नेत्र-मुख अवनत,
हास्यहीन, बालकवत् क्रोध ॥ १ ॥
जो उसने था किया, इसी
स्वाभाविक रसका ही व्यवहार ।
तो देना था तुम्हें चाहिये
उसे हर्षसे अपना प्यार ॥
हृदयंगम करना आवश्यक
था वह सरल प्रणयका भाव ।
नहीं तिरस्कृत करना था नव-
प्रेमिकका वह गूँगा चाव ॥ २ ॥
प्रथम मिलनमें ही क्या समुचित
है समस्त संकोच-विनाश ।

क्या उससे वस्तुतः नहीं
होता नवीन मधु-रसका नाश ॥
नव कलिकाके लिये चाहना
असमयमें ही पूर्ण विकास ।
क्या है नहिं अप्राकृत और
असंगत उससे ऐसी आस ? ॥ ३ ॥
क्या नववधू कभी मुखरा बन
कर सकती प्रियसे परिहास ?
क्या वह मूर्खा या संदिग्धा
बन सह सकती मिथ्या त्रास ? ॥
क्या वह प्रौढ़ा सदृश खोल
अवगुंठन कर सकती रस-भंग ?
क्या बहने देती, मर्यादा
तजकर, सहसा हास्य-तरंग ? ॥ ४ ॥
क्या 'मूकास्वादनवत्' होता
नहीं प्रेमका असली रूप ?
क्या उसमें है नहीं छलकता
प्रेम-पयोधि गँभीर अनूप ? ॥
क्या है नहीं प्रसन्न इष्टको
मानस-पूजा ही करती ?

क्या वह नहीं बाह्य पूजासे
बढ़कर इष्ट-हृदय हरती ॥ ५ ॥
यदि नव प्रेमिकने तुमको
पूजा केवल मनसे ही नाथ !
स्तंभित, कंपित, मुग्ध हर्षसे
कह-सुन कुछ भी सका न साथ ॥
क्या इससे हे प्रेमिकवर ! प्रभु !
हुआ तुम्हारा कुछ अपमान ?
क्या इसमें अपराध मानते
सरल भक्तका ? हे भगवान ! ॥ ६ ॥
यदि ऐसा है नहीं देव ! तो
क्यों फिर होते अंतर्द्धान ?
क्यों दर्शनसे वञ्चित करते,
क्यों दिखलाते इतना मान ? ॥
क्यों आँखोंसे ओझल होते,
पता नहीं क्यों बतलाते ?
क्यों भक्तोंको सुख पहुँचाने
नहीं शीघ्र सम्मुख आते ? ॥ ७ ॥



(३९) आरती

जय जगदीश हरे, प्रभु ! जय जगदीश हरे !
मायातीत, महेश्वर, मन-वच-बुद्धि परे ॥ टेक ॥
आदि, अनादि, अगोचर, अविचल, अविनाशी ।
अतुल, अनंत, अनामय, अमित शक्ति-राशी ॥१॥ जय०
अमल, अकल, अज, अक्षय, अव्यय, अविकारी ।
सत-चित-सुखमय, सुंदर, शिव, सत्ताधारी ॥२॥ जय०
विधि, हरि, शंकर, गणपति, सूर्य, शक्तिरूपा ।
विश्व-चराचर तुमहीं, तुमहीं जग-भूपा ॥३॥ जय०
माता-पिता-पितामह-स्वामि-सुहृद-भर्ता ।
विश्वोत्पादक-पालक-रक्षक-संहर्ता ॥४॥ जय०
साक्षी, शरण, सखा, प्रिय, प्रियतम, पूर्ण, प्रभो ।
केवल, काल, कलानिधि, कालातीत, विभो ॥५॥ जय०
राम-कृष्ण, करुणामय, प्रेमामृत-सागर ।
मनमोहन, मुरलीधर, नित-नव, नटनागर ॥६॥ जय०
सब विधि हीन, मलिनमति, हम अति पातकिजन ।
प्रभु-पद-विमुख अभागी, कलि-कलुषित तन-मन ७जय०
आश्रय-दान दयार्णव ! हम सबको दीजे ।
पाप-ताप हर हरि ! सब, निज-जन कर लीजे ॥८॥ जय०

(४०)

हर हर हर महादेव ! (टेक)

सत्य, सनातन, सुंदर, शिव ! सबके स्वामी ।
अविकारी, अविनाशी, अज अंतर्यामी ॥ १ ॥
हर हर०

आदि, अनंत, अनामय, अकल, कलाधारी ।
अमल, अरूप, अगोचर, अविचल, अघहारी ॥ २ ॥
हर हर०

ब्रह्मा, विष्णु, महेश्वर, तुम त्रिमूर्तिधारी ।
कर्ता, भर्ता, धर्ता, तुम ही संहारी ॥ ३ ॥
हर हर०

रक्षक, भक्षक, प्रेरक, तुम औढरदानी ।
साक्षी, परम अकर्ता कर्ता अभिमानी ॥ ४ ॥
हर हर०

मणिमय भवन निवासी, अति भोगी, रागी ।
सदा मसानबिहारी, योगी, वैरागी ॥ ५ ॥
हर हर०

छाल, कपाल, गरल गल, मुंडमाल व्याली ।
चिताभस्म तन, त्रिनयन, अयन-महाकाली ॥ ६ ॥
हर हर०

प्रेत-पिशाच-सुसेवित पीत जटाधारी ।
विवसन, विकट रूपधर, रुद्र प्रलयकारी ॥ ७ ॥
हर हर०

शुभ्र, सौम्य, सुरसरिधर, शशिधर सुखकारी ।
अति कमनीय शान्तिकर शिव मुनि-मन-हारी ॥ ८ ॥
हर हर०

निर्गुण, सगुण, निरंजन, जगमय, नित्य प्रभो ।
कालरूप, केवल, हर ! कालातीत विभो ॥ ९ ॥
हर हर०

सत-चित-आनँद, रसमय, करुणामय, धाता ।
प्रेम-सुधा-निधि, प्रियतम, अखिल विश्व-त्राता ॥१०॥
हर हर०

हम अति दीन, दयामय ! चरण शरण दीजै ।
सब बिधि निर्मल मति कर अपना कर लीजै ॥११॥
हर हर०



नाम

(४१) राग पीलू बरवा

बन्धुगणो ! मिल कहो प्रेमसे-
'यदुपति व्रजपति श्यामा-श्याम ।'
मुदित चित्तसे घोष करो पुनि-
'पतीतपावन राधे-श्याम ॥'
जिह्वा-जीवन सफल करो कह-
'जय यदुनन्दन, जय घनश्याम ।'
हृदय खोल बोलो, मत चूको-
'रुक्मिणिवल्लभ श्यामा-श्याम ॥'
नव-नीरद-तनु, गौर मनोहर,
'जय श्रीमाधव जय बलराम ।'
उभय सखा मोहनके प्यारे-
'जय श्रीदामा, जयति सुदाम ॥'
परमभक्त निष्कामशिरोमणि-
'उद्धव-अर्जुन शोभाधाम ।'
प्रेम-भक्ति-रस-लीन निरन्तर
'विदुर, विदुर-गृहिणी अभिराम ॥'

अति उमंगसे बोलो सन्तत–
'यदुपति ब्रजपति श्यामा-श्याम ।'
मुक्तकंठसे सदा पुकारो–
'पतीतपावन राधे-श्याम ॥'

(४२) राग आसावरी

साधन नाम-सम नहि आन ।
जपत सिव-सनकादि, सारद-नारदादि सुजान ॥
नामके बल मिटत भीषन असुभ भाग्य-बिधान ।
नाम-बल मानव लहत सुख सहज मन-अनुमान ॥
नाम टेरत टरत दारुन बिपति सोक महान ।
आर्त्त करि, नर-नारि, ध्रुव सब रहे सुचि सहिदान ॥
नामके परतापतें जलपर तरे पाषान ।
नाम-बल सागर उलाँघ्यो सहज ही हनुमान ॥
नाम-बल संभव सकल जे कछु असंभव जान ।
धन्य ते नर ! रहत जिनके नाम-रटकी बान ॥
पाप-पुंज प्रजारिबे हित प्रबल पावक-खान ।

होत छिनमें छार, निकसत नाम जान-अजान ॥
नाम-सुरसरिमें निरंतर करत जे जन न्हान ।
मिटत तीनों ताप, मुख नहिं होत कबहुँ मलान ॥
नाम-आश्रित जननके मन बसत नित भगवान ।
जरत खरत कुवासना सब तुरत लज्जा मान ॥
नाम जीवन, नाम अमरित, नाम सुखको थान ।
नाम-रत जे नाम-पर, ते पुरुष अति मतिमान ॥
नाम नित आनंद-निरझर, अति पुनीत पुरान ।
मुक्त सत्वर होत जे जन करत सादर पान ॥
नाम जपत सुसिद्ध जोगी बनत समरथवान ।
नामतें उपजत सुभगति, बिराग सुभ बलवान ॥
नामके परताप दीखत प्रकृति-दीप बुझान ।
नाम-बल ऊगत प्रभामय भानु तत्त्वज्ञान ॥
नामकी महिमा अमित, को सकै करि गुनगान ।
रामतें बड़ नाम, जेहि बल बिकत श्रीभगवान ॥

(४३) राग पीलू बरवा

बन्धुगणो ! मिल कहो प्रेमसे-

'रघुपति राघव राजाराम ।'

मुदित चित्तसे घोष करो पुनि-

'पतीतपावन सीताराम ॥'

जिह्वा-जीवन सफल करो कह-

'जय रघुनन्दन, जय सियाराम ।'

हृदय खोल बोलो मत चूको-

'जानकिवल्लभ सीताराम ॥'

गौर रुचिर, नवघनश्याम छवि,

'जय लक्ष्मण, जय जय श्रीराम ।'

अनुगत परम अनुज रघुवरके-

'भरत-सत्रुहन शोभाधाम ॥'

उभय सखा राघवके प्यारे-

'कपिपति, लंकापति अभिराम ।'

परम भक्त निष्कामशिरोमणि
'जय श्रीमारुति पूरणकाम ॥'
अति उमंगसे बोलो संतत-
'रघुपति राघव राजाराम ।'
मुक्तकंठ हो सदा पुकारो-
'पतीतपावन सीताराम ॥'

(४४) होरी

भूल जगके विषयनकों, जप मन हरिको नाम ॥
दीनबंधु हरि करुनासागर, पतितनके विश्राम ।
आपद-अंधकारमहँ श्रीहरि पूरनचंद्र ललाम ॥
पाप-ताप सब मिटैं नामतें, नास होहिं सब काम ।
जमके दूत भयातुर भागैं, सुनत नाम सुखधाम ॥
भाग्यवान जे जपत निरंतर नाम, सदा निष्काम ।
निरख सुखी सत्वर हों मूरति हरिकी जग-अभिराम ॥
भाग्यहीन जिन्हके मन-मुखमहँ बसत न हरिको नाम ।
नरकरूप जग जीवन तिन्हको भूमिभार अघ-धाम ॥

(४५) राग भैरवी

राम राम राम भजो, राम भजो, भाई ।
राम भजन-हीन जनम सदा दुःखदाई ॥
अति दुरलभ मनुजदेह सहजहीमें पाई ।
मूरख रह्यो राम भूल बिषयन मन लाई ॥
बालकपन दुख अनेक भोगत ही बिताई ।
स्त्री-सुत-धनकी अपार चिंता तरुनाई ॥
रात-दिवस पसुकी ज्यों इत उत रह्यो धाई ।
तृसनाकी बेलि बढ़ी पाप-बारि पाई ॥
वात-पित्त-कफहु बढ़यो, दुखद जरा आई ।
इंद्रिनकी शक्ति घटी, सिर धुनि पछिताई ॥
इतनेहिमें कठिन काल घेरि लियो आई ।
मृत्यु निकट देखि-देखि अति ही भय पाई ॥
सोच करत मन-ही-मन अतिसै पछिताई ।
हाय मैं न भज्यो राम, कहा करयो माई ! ॥
मृत्यु प्रान हरन करत कुटुँबतें छुड़ाई ।
महादुःख रह्यो छाय, बिफल सब उपाई ॥

पापनके फलस्वरूप बुरी जोनि पाई ।
दुःख-भोग करत पुनि नरकनमहँ जाई ॥
बार-बार जनम-मृत्यु, ब्याधि अरु बुढ़ाई ।
झेलत अति कठिन कष्ट, शांति नाँहिं पाई ॥
यहि बिधि भवदुख अपार बरने नाहिं जाई ।
भव-भेषज राम-नाम, स्रुति-पुरान गाई ॥
राम-नाम जपत त्रिबिध ताप जग नसाई ।
राम-नाम मँगलकरन सब बिधि सुखदाई ॥
प्रेममगन मनतें, सकल कामना बिहाई ।
जोइ जपत राम-नाम सोइ मुकति पाई ॥

(४६) राग आसावरी

भली है राम-नामकी ओट ।
जिन्ह लीन्हीं तिन्हके मस्तकतें पड़ी पापकी पोट ॥
राम-नाम सुमिरन जिन्ह कीन्हो लगी न जमकी चोट ।
अन्तःकरन भयो अति निरमल, रही तनिक नहि खोट ॥
राम-नाम लीन्हें तें जर गइ माया-ममता-मोट ।
राम-नामतें मिले राम, जग रह गयो फोकट-फोट ॥

(४७) होरी

और सब भूल भलेही, श्रीहरिनाम न भूल ॥
श्रीहरिनाम सुधामय सबके हित, सबके अनुकूल ।
श्रीहरिनाम-भजनतें पहुँचत भवसागर पर-कूल ॥
रोग, सोग, संताप, पाप सब, जैसे सूखी तूल ।
भगवन्नाम प्रबल पावकतें जरैं सकल जड़मूल ॥
जिन्ह हरिनाम भजन नहिं कीन्हों, जीवन तिनको धूल ।
भक्ति-रसाल मिलै नहि कबहूँ, बोये बिषय-बबूल ॥
श्रीहरिनाम भयो जिनके मन जग-जीवनको मूल ।
तिन्हको धन्य जगतमहँ जीवन पातक-पथ-प्रतिकूल॥

(४८) राग भैरवी

कर मन हरिको ध्यान, राम-गुन गाइये ।
प्रेम-मगन सब देह सुरति बिसराइये ॥
हरि-संकीर्तन करत अश्रुधारा बहै ।
गदगद होवे कंठ, परम सुख सो लहै ॥
पुलकित तनु हरि-प्रेम हृदय जो नाचहीं ।
सुर-मुनि ताकी अनुपम गति नित जाचहीं ॥
नाम लेत मुख हँसत, कबहुँ कर रुदनहीं ।
ताको हिय नित करहिं दयामय सदनहीं ॥

(४९) राग भैरवी

राम राम गाओ संतो, राम राम गाओ ।
राम-नाम गाइ-गाइ रामको रिझाओ ॥
रामहिको नाम जपो, रामहिको ध्याओ ।
राम राम राम कहत प्रमुदित ह्वै जाओ ॥
राम राम सुनि-सुनाइ हिय अति हुलसाओ ।
राम राम राम रटत सब विधि सुख पाओ ॥
राम-नाम-मद्य पिओ, विषय-मद भुलाओ ।
राम-सु-रस पीय-पीय तन-सुधि बिसराओ ॥
राम आदि, मध्य राम, राम अंत पाओ ।
राम अखिल जगतरूप राममें समाओ ॥

(५०) राग तिलककामोद

करतलसों ताली देत, राम मुख बोली ।
बस जली तुरत पातक-पुंजोंकी होली ॥

(५१) राग बिहाग

प्रेममुदित मनसे कहो राम राम राम ।
श्री राम राम राम, श्री राम राम राम ॥
पाप कटैं, दुःख मिटैं, लेत राम-नाम ।
भव-समुद्र सुखद नाव एक राम-नाम ॥
परम सांति-सुख-निधान नित्य राम-नाम ।
निराधारको अधार एक राम-नाम ॥
परम गोप्य, परम इष्ट मंत्र राम-नाम ।
संत-हृदय सदा बसत एक राम-नाम ॥
महादेव सतत जपत दिव्य राम-नाम ।
कासि मरत मुक्त करत कहत राम-नाम ॥
मात-पिता, बंधु-सखा, सबहि राम-नाम ।
भक्त-जनन-जीवन-धन एक राम-नाम ॥

(५२) राग गारा

मुखसों कहत राम-नाम पंथ चलत जोई ।
पग-पगपर पावत नर जग्य-फलहि सोई ॥

(५३) राग श्रीराग विलम्बित
(मारवाड़ी)

बिनती सुण म्हारी, सुमरो सुखकारी हरिके नामनैं ।
भटकत फिरयो जूण चौरासी लाख महा दुखदाई ।
बिन कारण कर दया नाथ फिर मिनख-देह बकसाई ॥
गरभमायँ माताके आकर पाया दुःख अनेक ।
अरजी करी प्रभूसे, बाहर काढो, राखो टेक ॥
करी प्रतिग्या गरभमायँ मैं सुमरण करस्यूँ थारो ।
नहीं लगाऊँ मन बिषयाँमैं, प्रभुजी मनैं उबारो ॥
जलम लेय जगमायँ चित्तनै बिषयाँ मायँ लगायो ।
जलम-मरण-दुख-हरण रामको पावन नाम भुलायो ॥
खोई उमर ब्रथा भोगाँकै सुख-सुपनेकै माँई ।
सुख नहिं मिल्यो, बढ़यो दुख दिन-दिन,
रह्यो सोग मन छाई ॥
मृग-तृस्नाकी धरतीमैं जो समझै भ्रमसैं पाणी ।
उसकी प्यास नहीं मिटणैकी, निश्चै लीज्यो जाणी ॥
यूँ इण संसारी भोगाँमैं नहीं कदे सुख पायो ।
दुःखरूप सुख देवै किस बिध, मूरख मन भरमायो ॥
कर बिचार, मन हटा बिषयसैं प्रभु चरणाँमैं ल्याओ ।
करो कामना त्याग, हरीको नाम प्रेमसैं गाओ ॥

सुख-दुखमें संतोष करो अब, सगळी इच्छा छोड़ो ।
'मैं' और 'मेरो' त्याग हरीके रूप मायँ चित जोड़ो ॥
मिलै सांति, दुख कदे न व्यापै, आवै आनँद भारी ।
प्रेममगन हो नाम हरीको जपो सदा सुखकारी ॥

(५४) राग जंगला

राम राम राम राम राम राम राम ।
भज मन प्यारे सीताराम ॥

संतोंके जीवन ध्रुव-तारे, भक्तोंके प्राणोंसे प्यारे ।
विश्वंभर, सब जग रखवारे, सब बिधि पूरणकाम ॥
राम राम० ॥

अजामील-दुख टारनहारे, गज-गनिकाके तारनहारे ।
द्रुपदसुता भय वारनहारे, सुखमय मंगलधाम ॥
राम राम० ॥

अनिल-अनल-जल-रवि-शशि-तारे,
पृथ्वी-गगन, गन्ध-रस सारे ।
तुझ सरिताके सब फौवारे, तुम सबके विश्राम ॥
राम राम० ॥

तुमपर धन-जन, तन-मन वारे, तुझ प्रेमामृत-मदमतवारे
धन्य धन्य! ते जग-उजियारे, जिनके मुख यह नाम ॥
राम राम० ॥

(५५) राग विहाग

राम राम राम राम राम राम राम
राम राम राम राम राम राम राम ।
जगविश्राम ! मंगलधाम ! पूरणकाम ! सुन्दर नाम ॥
योग-जप-तप-व्रत-नियम-यम, यज्ञ-दान अपार ।
रामसम नहि एक साधन, राम सब आधार ॥
सब मिल कहो जय जय राम ॥ राम० ॥
राम गुरु, पितु-मातु रामहि, राम सुहृद उदार ।
राम स्वामी, सखा रामहि, राम प्रिय परिवार ॥
सब मिल कहो जय जय राम ॥ राम० ॥
राम जीवन, राम तन-मन, राम धन-जन-दार ।
राम सुत, सुख-साज रामहि, राम प्राणाधार ॥
सब मिल कहो जय जय राम ॥ राम० ॥
राम राग, विराग रामहि, राम स्नेहागार ।
राम प्रेमद, राम प्रेमिक, प्रेम-पारावार ॥
सब मिल कहो जय जय राम ॥ राम० ॥
राम विधि, शिव राम, पालक-विष्णु विश्वाधार ।
राममय जग, राम जगमय, रामही विस्तार ॥
सब मिल कहो जय जय राम ॥ राम० ॥

(५६) राग सोहनी

चाहता जो परम सुख तू, जाप कर हरिनामका ।
परम पावन, परम सुंदर, परम मंगलधामका ॥
लिया जिसने है कभी हरिनाम भय-भ्रम-भूलसे ।
तर गया, वह भी तुरत, बन्धन कटे जड़-मूलसे ॥
हैं सभी पातक पुराने घास सूखेके समान ।
भस्म करनेको उन्हें हरिनाम है पावक महान ॥
सूर्य उगते ही अँधेरा नाश होता है यथा ।
सभी अघ हैं नष्ट होते नामकी स्मृतिसे तथा ॥
जाप करते जो चतुर नर सावधानीसे सदा ।
वे न बँधते भूलकर यमपाश दारुणमें कदा ॥
बात करते, काम करते, बैठते-उठते समय ।
राह चलते नाम लेते विचरते हैं वे अभय ॥
साथ मिलकर प्रेमसे हरिनाम करते गान जो ।
मुक्त होते मोहसे कर प्रेम-अमृत पान सो ॥



भजन-महिमा

(५७) राग खमाच

रे मन हरि-सुमिरन करि लीजै ॥टेक॥
हरिको नाम प्रेमसों जपिये, हरिरस रसना पीजै।
हरिगुन गाइय, सुनिय निरंतर, हरि-चरननि चित दीजै॥
हरि-भगतनकी सरन ग्रहन करि, हरिसँग प्रीति करीजै।
हरि-सम हरि-जन समुझि मनहिं मन, तिनकौ सेवन कीजै॥
हरि केहि बिधिसों हमसों रीझैं, सो ही प्रश्न करीजै।
हरि-जन हरि-मारग पहिचानैं, अनुमति देहिं सो कीजै॥
हरि हित खाइय, पहिरिय हरि हित, हरि हित करम करीजै।
हरि हित हरि-सम सब जग सेइय, हरि-हित मरिये जीजै॥

(५८) राग मालगुञ्जी

मन बन मधुप हरि-पद-सरोरुह लीन हो।
निश्चिन्त कर रस-पान भय-भ्रम-हीन हो॥ टेक॥
तू भूलकर सारे जगतकी भावना,
रह मस्त आठों पहर, मत यों दीन हो॥मन०॥

तू गुनगुनाहट छोड़ बाहरकी सभी,
बस रामगुन गुंजार कर मधु-पीन हो ॥मन०॥
तू छोड़ दे अब जहँ-तहाँका भटकना,
हरि-चरण आश्रित तू यथा जल मीन हो ॥मन०॥

(५९) राग सारंग

हरिको हरि जन अतिहि पियारे ।
हरि हरि-जनतें भेद न राखैं, अपने सम करि डारैं ॥
जाति-पाँति,कुल-धाम,धरम-धन,नहि कछु बात बिचारैं।
जेहि मन हरि-पद-प्रेम अहैतुक,तेहि ढिग नेम बिसारैं ॥
ब्याध, निषाद, अजामिल, गनिका,केते अधम उधारे।
करि खग-बानर-भालु-निसाचर,प्रेम-बिबस,सब तारे॥
परखि प्रेम, हिय हरखि राम भिलनीके भवन पधारे।
बारहि बार खात जूठे फल, रहे सराहत हारे ॥
बिदुर-घरनि सुधि बिसरी तनकी,स्याम जबहिं पगु धारे।
कदली-फलके छिलका खाये, प्रेममगन मन भारे ॥
रे मन ! ऐसे परम प्रेममय हरिको मत बिसरा रे ।
प्रभुके पद-सरोज-रस चाखन, तू मधुकर बनि जा रे ॥

(६०) राग पूर्वी

मैं नित भगतन हाथ बिकाऊँ ।
आठौं जाम हृदयमें राखूँ, पलक नहीं बिसराऊँ ॥
कल न परत बैकुंठ बसत मोहि,जोगिन मन न समाऊँ ।
जहँ मम भगत प्रेमजुत गावहिं, तहँा बसत सुख पाऊँ ॥
भगतनकी जैसी रुचि देखूँ, तैसो बेष बनाऊँ ।
टारूँ अपने बचन भगत लगि, तिनके बचन निभाऊँ ॥
ऊँच-नीच सब काज भगतके, निज कर सकल बनाऊँ ।
पग धोऊँ, रथ हाँकूँ, माँजूँ बासन, छानि छवाऊँ ॥
माँगूँ नाहिं दाम कछु तिनतें,नहिं कछु तिनहिं सताऊँ ।
प्रेमसहित जल, पत्र, पुष्प, फल, जो देवै सो खाऊँ ॥
निज-सरबस भगतनको सौंपूँ, अपनो स्वत्व भुलाऊँ ।
भगत कहैं सोइ करूँ, निरंतर, बेचैं तो बिक जाऊँ ॥

(६१) राग मालकोश

तू भाइ म्हारो रे म्हारो ।
तूँ म्हारो, तेरो सब म्हारो, जग सारो ही म्हारो ॥
मनमैं सदा दूसरो समझै ऊपरसैं कह थारो ।
म्हारो होता साँता भी सो रहे म्हारैसैं न्यारो ॥

एक बार जो कपट छोड़कर कहै 'नाथ मैं थारो' ।
सो म्हारे सगळाँ पुतराँमें अधिक लाडलो म्हारो ॥
सदा पातकी, सदा कुकरमी, विषयाँमैं मतवारो ।
'मैं थारो' यूँ साचैं मनसैं, कहताँ ही हो म्हारो ॥
झटपट पुन्यवान सो होवै, पापाँसैं छुटकारो ।
म्हारो म्हारी गोद बिराजै, कदे न म्हाँसूँ न्यारो ॥
तन-मन-बाणीसैं जो म्हारो, सो निस्चै ही म्हारो ।
कदे न लाज्यो, कदे न लाजै, नाँव-बिडद-जस म्हारो ॥

भगवत्कृपा

(६२) राग पलास

पुत्र-शोक-सन्तप्त कभी कर, दारुण दुख है देती ।
कभी अयश अपमान दानकर, मान सभी हर लेती ॥
कभी जगतके सुंदर सुख सब छीन, दीनमन करती ।
पथभ्रान्त कर कभी कठिन व्यवहार विषम आचरती ।१।
पुत्र-कलत्र, राजवैभव बहु, मान कभी है देती ।
दारुण दुख-दारिद्रय-दीनता क्षणभरमें हर लेती ॥
पल-पलमें, प्रत्येक दिशामें सतत कार्य है करती ।
कड़वी-मीठी औषध देकर व्यथा हृदयकी हरती ॥२॥

पर वह नहीं कदापि सहज ही परिचय अपना देती ।
चमक तुरत चंचल चपला-सी दृग-अंचल ढक लेती ॥
जबतक इस घूँघटवालीका मुख नहिं देखा जाता ।
नाना भाँति जीव तबतक अकुलाता, कष्ट उठाता ॥३॥
जिस दिन यह आवरण दूर कर दिव्य द्युति दिखलाती ।
परिचय दे, पहचान बताकर, शीतल करती छाती ॥
उस दिनसे फिर सभी वस्तु परिपूर्ण दीखती उससे ।
संसृतिहारिणि सुधा-वृष्टि हो रही निरंतर जिससे ॥४॥
सहज दयाकी मूरति देवीने जबसे अपनाया ।
महिमामय मुखमंडल अपनेकी दिखला दी छाया ॥
तबसे अभय हुआ, आकुलता मिटी, प्रेम-रस छलका ।
मनका उतरा भार सभी, अब हृदय हो गया हल्का ॥५॥
जिन बिभीषिकाओंसे डरकर पहले, था थर्राता ।
उनमें भव्य दिव्य दर्शन कर अब प्रमुदित मुसुकाता ॥
भगवत्कृपा ! 'अकिंचन' तेरे ज्यों-ज्यों दर्शन पाता ।
त्यों-ही-त्यों आनंद-सिंधुमें गहरा डूबा जाता ॥६॥



चेतावनी

(६३) राग भैरवी

चेत कर नर, चेत कर, ग़फ़लतमें सोना छोड़ दे।
जाग उठ तत्काल, हरि-चरणोंमें चितको जोड़ दे ॥
मनुज-तन संसारमें मिलता नहीं है बार-बार।
हो सजग ले लाभ इसका, नाम प्रभुका मत बिसार ॥
विषय-मदमें चूर होकर क्यों दिवाना हो रहा।
श्वास ये अनमोल तेरे, क्यों वृथा तू खो रहा ॥
त्याग दे आशा विषयकी, काट ममता-पाशको।
ध्यान कर हरिका सदा, कर सफल हर एक श्वासको ॥
विषय-मदको छोड़ हरि-पद-प्रेम-मद तू पान कर।
हो दिवाना प्रेममें श्रीरामका गुणगान कर ॥
परम प्रियतम हृदय-धनके प्रेम-मदमें चूर हो।
छका रह दिन-रात तू, आनंदमें भरपूर हो ॥

(६४) लावनी

पलभर पहले जो कहता था, यह धन मेरा यह घर मेरा ।
प्राणोंके तनसे जाते ही उसको लाकर बाहर गेरा ॥
जिस चटक-मटक औ फैशनपर तू है इतना भूला फिरता ।
जिस पद-गौरवके रौरवमें दिन-रात शौकसे है गिरता ॥
जिस तड़क भड़क औ मौज-मजोंमें फुरसत नहीं तुझे मिलती
जिस गान-तान औ गप्प-शप्पमें सदा जीभ तेरी हिलती॥
इन सभी साज-सामानोंसे छुट जायेगा रिश्ता तेरा ।
प्राणोंके तनसे जाते ही उसको लाकर बाहर गेरा ॥१॥
जिस धन-दौलतके पानेको तू आठों पहर भटकता है ।
जिन भोगोंका अभाव तेरे अंतरमें सदा खटकता है ॥
जिस सबल देह सुंदर आकृतिपर तू इतना अकड़ा जाता ।
जिन विषयोंमें सुख देख रहा, पर कभी नहीं पकड़े पाता ॥
इस धन, जोबन, बल, रूप सभीसे टूटेगा नाता तेरा ।
प्राणोंके तनसे जाते ही उसको लाकर बाहर गेरा ॥२॥
जिस तनको सुख पहुँचानेको तू ऊँचे महल बनाता है ।
जिसके विलासके लिये निरंतर चुन-चुन साज सजाता है ॥
जिसको सुंदर दिखलानेको है साबुन तेल लगाता तू ।
जिसकी रक्षाके लिये सदा है देवी-देव मनाता तू ॥

वह धूलि-धूसरित हो जायेगा सोने-सा शरीर तेरा।
प्राणोंके तनसे जाते ही उसको लाकर बाहर गेरा ॥३॥
जिस नश्वर तनके लिये किसीसे लड़नेमें नहिं सकुचाता।
जिस तनके लिये हाथ फैलाते जरा नहीं तू शरमाता ॥
जो चोर-डाकुओंके डरसे नित पहरोंके अंदर सोता।
जो छायाको भी भूत समझकर डरता है व्याकुल होता ॥
वह देह खाक हो पड़ा अकेला सूने मरघटमें तेरा।
प्राणोंके तनसे जाते ही उसको लाकर बाहर गेरा ॥४॥
जिन माता-पिता, पुत्र-स्वामीको अपना मान रहा है तू।
जिन मित्र-बन्धुओंको, वैभवको अपना जान रहा है तू ॥
है जिनसे यह सम्बन्ध टूटना कभी नहीं तैंने जाना।
है जिनके कारण अहंकारसे नहीं बड़ा किसको माना ॥
यह छूटेगा सम्बन्ध सभीसे, होगा जंगलमें डेरा।
प्राणोंके तनसे जाते ही उसको लाकर बाहर गेरा ॥५॥
है जिनके लिये भूल बैठा उस जगदीश्वरका पावन नाम।
तू जिनके लिये छोड़ सब सुकृत पापोंका है बना गुलाम॥
रे! भूले हुए जीव! यह सब कुछ पड़े यहीं रह जायेंगे।
जिनको तैंने अपना समझा, वे सभी दूर हट जायेंगे ॥
हो जा सचेत! अब व्यर्थ गवाँ मत जीवन यह अमूल्य तेरा
प्राणोंके तनसे जाते ही उसको लाकर बाहर गेरा ॥६॥

(६५) राग भूपाली

तजो रे मन झूठे सुखकी आसा ।

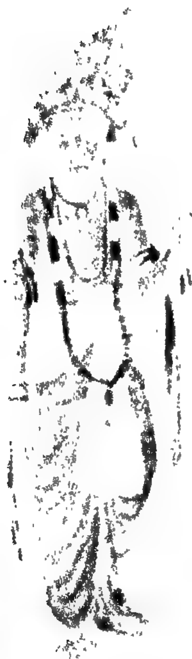
हरि-पद भजो, तजो सब ममता, छोड़ बिषय-अभिलासा ।
बिषयनमें सुख सपनेहुँ नाहीं केवल मात्र दुरासा ॥
कामिनि-सुत, पितु-मातु, बंधु, जस, कीरति, सकल सुपासा ।
छिनमहँ होत बियोग सबन्हते, कठिन काल जग नासा ॥
क्षणभंगुर सब बिषय, निरंतर बनत कालके ग्रासा ।
इनमें जो कोउ थिर सुख चाहत, सो नित मरत पियासा ॥
प्रभु-पद-पदम सदा अबिनासी, सेवत परम हुलासा ।
मिलै परम सुख, घटै न कबहूँ, जिनके मन बिस्वासा ॥

(६६) राग कालिंगड़ा

करत नहिं क्यों प्रभुपर बिस्वास ।

बिस्वंभर, सब जगके पालक, पूरैं तेरी आस ॥
सुख लगि ठोकर खात इतहिं-उत, डोलत सदा उदास ।
मिलत न कबहूँ सुख बिषयनमें दुखमय यह अभिलास ॥
प्रभु-पद-पदम सदा चिंतन कर, छूटै जमकी त्रास ।
मन अनंत आनंदमगन नित, प्रमुदित परम हुलास ॥

श्रीमुरलीमनोहर



मुरलीमनोहर कृष्ण कृपानिधि कुंजविहारी जै जै !

(६७) राग पूर्वी

' जगतमें स्वारथके सब मीत ।
जबलगि जासौं रहत स्वार्थ कछु, तबलगि तासौं प्रीत॥
मात-पिता जेहि सुतहित निस-दिन, सहत कष्ट-समुदाई।
बृद्ध भये स्वारथ जब नास्यो, सोइ सुत मृत्यु मनाई ॥
भोगजोग जबलौं जुवती स्त्री, तबलौं अतिही पियारी ।
बिधिबस सोइ जदि भई ब्याधिबस, तुरत चहत तेहि मारी
प्रियतम, प्राननाथ कहि कहि जो अतुलित प्रीति दिखावत
सोइ नारी रचि आन पुरुष सँग, पतिकी मृत्यु मनावत ॥
कल नहिं परत मित्र बिनु छिनभर, संग रहे, सँग खाये ।
बिनस्यो धन, स्वारथ जब छूट्यो, मुख बतरात लजाये ॥
साँचो सुहृद, अकारन प्रेमी, राम एक जग माँहीं ।
तेहि सँग जोरहु प्रीति निरंतर, जग कोउ अपनो नाहीं ॥

(६८) राग केदार

मन, कछु वा दिनकी सुधि राख ।
जा दिन तेरे तनु-दुकानकी उठि जैहैं सब साख ॥
इंद्रिय सकल न मानहिं अनुमति छोड़ चलैं सब साथ
सुत, परिवार, नारि नहिं कोऊ पूछैं दुखकी गाथ ॥

वारँट लै जमदूत आइ तोहि पकरि बाँधि लै जाय ।
कोउ न बनै सहाय काल तिहि देखत हो रहि जाय ॥
जमके कारागार नरक महँ अतिसय संकट पाय ।
बार-बार करनी सुमिरन करि सिर धुनि-धुनि पछिताय॥
जो यहि दुखतें उबरो चाहै, तो हरि-नाम पुकार ।
राम-नामते मिटैं सकल दुख, मिलै परम सुख-सार ॥

(६९) राग कौशिया

अरे मन, तू कछु सोच-बिचार ।
झूँठो जग साँचो करि मान्यो, भूल्यो फिरत गँवार ॥
मृग जिमि भूल्यो देखि असत जल, मरु धरनी बिस्तार ।
सून्याकास तिरवरा दीखत, मिथ्या नेत्र बिकार ॥
रसरी देखि सरप जिमि मान्यो, भयबस रह्यो पुकार ।
सीप माहिं ज्यों भयो रौप्य-भ्रम, तिमि मिथ्या संसार ॥
स्वप्न-दृश्य साँचे करि मानत, नहिं कछु तिनमहँ सार ।
तिमि यह जग मिथ्या ही भासत,प्रकृति-जनित खिलवार॥
जो यातें उद्धार चहै तो, हरिमय जगत निहार ।
मायापतिकी सरन गहे तें, होवे तव निस्तार ॥

(७०) राग कालिंगड़ा

अरे मन, कर प्रभुपर बिस्वास ।
क्यों इत-उत तू भटक्यो डोलै, झूठे सुखकी आस ॥
सुंदर देह, सुहावनि नारी, सब बिधि भोग-बिलास ।
कहा भयो धन-पुत्र भयेतें, मिटी न जमकी त्रास ॥
नौकर-चाकर, बंधु घनेरे, ऊँची पदवी खास ।
डरत लोग देखत भौं टेढ़ी, करत मृत्यु-उपहास ॥
मिथ्या मद-उन्मत्त गँवाये ब्यर्थ अमोलक स्वास ।
पछितायें पुनि कछु न बसाये, बनै कालको ग्रास ॥

(७१)

मूढ ! केहि बलपर तू इतरात ।
करत न सीधी बात काहुसौं, सदा रहत अठलात ।
जा दिन प्रान देह तजि जैहैं, कोउ न पूछिहैं बात ॥
जेहि तनुके सुख-साज सँवारन संतत सबहिं सतात ।
सो तनु सहज धूरि मिलि जैहै छार होहिं सब गात ॥
जेहि धन-संचै हेतु भूलि हरि, डोलत सब दिन-रात ।
धरम-करम तजि सदा गीध ज्यों मांस-हेतु ललचात ॥

सबसों रारि करत, नहिं मानत बंधु-पूज्य, पितु-मात।
सो धन-सरबस एहि थल रहिहैं, संग न दमरी जात॥
माल-मिलकियत सब रहि जैहैं, सबै टूटिहैं नात।
सगे-सहोदर, पुत्र-पाहुने, तजिहैं जननी-तात॥
राम-नामको जाप करत खल, पंचन माँहिं लजात।
'रामनाम सत' सबै बोलिहैं तोहि मसानु लै जात॥
रात-दिवस भटकत केहि कारन,नहिं कछु भेद लखात।
भूलि भगतबत्सल भगवानहिं नर-तनु बृथा गँवात॥

(७२) राग बहार

(मारवाड़ी बोली)

छोड मन तू मेरा-मेरा, अंतमें कोई नहीं तेरा॥
धन कारण भटक्यो-फिरयो, रच्या नित नया ढंग।
ढूँढ-ढूँढकर पाप कमाया, चली न कौडी संग।
होय गया मालक बहुतेरा॥ छोड०॥
टेढी बाँधी पागडी, बण्यो छबीलो छैल।
धरतीपर गिणकर पग मेल्या, मौत निमाणी गैल।
बखेरया हाड-हाड तेरा॥ छोड०॥

नित साबुनसैं न्हाइयो, अतर-फुलेल लगाय।
सजी-सजाई पूतली तेरी पडी मसाणाँ जाय।
जलाकर करी भसम-ढेरा॥ छोड॰॥
मदमातो, करड़ो रह्यो, राख्या राता नैन।
आयानें आदर नहिं दीन्यो, मुख नहिं मीठा बैन।
अंत जमदूत आय घेरा॥ छोड॰॥
पर-धन पर-नारी तकी, परचरचास्यूँ हेत।
पाप-पोट माथेपर मेली, मूरख रह्यो अचेत।
हुया फिर नरकाँमें डेरा॥ छोड॰॥
राम-नाम लीन्यो नहीं, सतसँगस्यूँ नहिं नेह।
जहर पियो, छोड्यो इमरतनै, अंत पड़ी मुख खेह।
साँस सब वृथा गया तेरा॥ छोड॰॥
दुरलभ देही खो दई, करम करया बदकार।
हूँ हूँ करतो ही मरयो तूँ गयो जमारो हार।
पड्यो फिर जनम-मरण फेरा॥ छोड॰॥
काम-क्रोध मद-लोभ तज, कर अंतरमें चेत।
'मैं' 'मेरे' ने छोड हृदेसें कर श्रीहरिस्यूँ हेत।
जनम यूँ सफल होय तेरा॥ छोड॰॥

(७३) राग कान्हरा

जगतमें कोइ नहिं तेरा रे ।
छाड़ वृथा अभिमान त्याग दे मेरा-मेरा रे ॥
काल-करम बस जग-सराय बिच कीन्हा डेरा रे ।
इस सरायमें सभी मुसाफर, रैन-बसेरा रे ॥
जिस तनको तू सदा सँवारै, साँझ-सबेरा रे ।
एक दिन मरघट पड़ै भसमका होकर ढेरा रे ॥
मात-पिता, भ्राता, सुत-बांधव, नारी-चेरा रे ।
अंत न होय सहाय, काल जब देवै घेरा रे ॥
जगका सारा भोग सदा कारन दुखकेरा रे ।
भज मन हरिका नाम, पार हो भव-जल बेरा रे ॥
दीनदयालु भक्त बत्सल हरि मालिक तेरा रे ।
दीन होय उनके चरनोंमें कर ले डेरा रे ॥



शिक्षा

(७४) राग केदार

जगतमैं कीजे यौं व्यवहार ।
अखिल जगत हरिमय बिचारि मन,कीजै सबसौं प्यार ॥
मात-पिता-गुरुजन-पद बंदिय श्रद्धासहित उदार ।
फल बिहाय, तिनकी आग्या सौं कीजे सब आचार ॥
देस-जाति, कुल-कुटुँब नारि-सुत, सुहृद, देह, परिवार।
जथाजोग सबकी सेवा नित कीजै स्वार्थ बिसार ॥
बरनाश्रम-अनुकूल करम सब कीजे बिधि अनुसार ।
फल-कामना-बिहीन, किंतु केवल करतव्य बिचार ॥

(७५) राग बिहाग

दुर्जन-संग कबहुँ नहिं कीजे ।
दुर्जन-मिलन सदा दुखदाई, तिनसौं पृथक रहीजै ॥
दुर्जनकी मीठी बानी सुनि, तनिक प्रतीति न कीजे ।
छाड़िय बिष सम ताहि निरंतर, मनहिं थान जनि दीजै॥
दुर्जन संग कुमति अति उपजे, हरि-मारग मति छीजे ।
छूटे प्रेम-भजन श्रीहरिको, मन बिषयनमैं भीजे ॥
बिनसै सकल सांति-सुख मनके, सिर धुनि-धुनि कर मींजै
मन अस दुर्जन दुखनिधि परिहरि,सत-संगति-रति कीजै

(७६) लावनी

इधर-उधर क्यों भटक रहा मन-
भ्रमर, भ्रांत, उद्देश्यविहीन।
क्यों अमूल्य अवसर जीवनका
व्यर्थ खो रहा तू, मतिहीन॥
क्यों कुवास-कंटकयुत विषमय
विषय-बेलिपर ललचाता।
क्यों सहता आघात सतत
क्यों दुःख निरंतर है पाता॥
विश्व-वाटिकाके प्रति-पदपर
भटक भले ही, हो अति दीन।
खाकर ठोकर द्वार-द्वारपर
हो अपमानित, हीन-मलीन॥
सह ले कुछ संताप और, यदि
तुझको ध्यान नहीं होता।
हो निराश, निर्लज्ज भ्रमण कर
फिर चाहे खाते गोता॥

विषमय विषय-बेलिको चाहे
कमल समझकर हो रह लीन ।
चाहे जहर भरे भोगोंको
सलिल समझकर बन जा मीन ॥
पर न जहाँतक तुझे मिलेगा
पावन प्रभु-पद-पद्म-पराग ।
होगा नहीं जहाँतक उसमें
अनुपम तव अनन्य अनुराग ॥
कर न चुकेगा तू जबतक
अपनेको, बस, उसके आधीन ।
होगा नहीं जहाँतक तू
स्वर्गीय सरस सरसिज आसीन ॥
नहीं मिटेगा ताप वहाँतक,
नहीं दूर होगी यह भ्रांति ।
नहीं मिलेगी शांति सुखप्रद
नहीं मिटेगी भीषण भ्रांति ॥
इससे हो सत्वर, सुन्दर हरि
चरण-सरोरुहमें तल्लीन ।

कर मकरंद मधुर आस्वादन
पापरहित हो पावन पीन ॥
भय-भ्रम-भेद त्यागकर, सुखमय
सतत सुधारस कर तू पान।
शांत-अमर हो, शरणद चरण-
युगलका कर नित गुण-गण-गान ॥

(७७)

शुद्ध, सच्चिदानंद, सनातन,
अज, अक्षर, आनँद-सागर।
अखिल चराचरमें नित व्यापक,
अखिल जगतके उजियागर ॥
विश्व-मोहिनी मायाके
मोहन मनमोहन! नटनागर!
रसिक श्याम! मानव-वपु-धारी!
दिव्य, भरे गागर सागर ॥ १ ॥
भक्त-भीति-भंजन, जन-रंजन,
नाथ निरंजन एक अपार।

नव-नीरद-श्यामल-सुंदर शुचि,
सर्वगुणाकर, सुषमा-सार ॥
भक्तराज वसुदेव-देवकीके
सुख-साधन, प्राणाधार ।
निज लीलासे प्रकट हुए
अत्याचारीके कारागार ॥ २ ॥
पावन दिव्य प्रेम पूरित व्रज-
लीला प्रेमीजन-सुखमूल ।
तन-मन-हारिणि बजी बंसरी
रसमयकी कालिंदी-कूल ॥
गिरिधर, विविध रूप धर हरिने
हर ली विधि-सुरेंद्रकी भूल ।
कंस-केशि-वध, साधु-त्राण कर
यादव-कुलके हर हूच्छूल ॥ ३ ॥
समरांगणमें सखा भक्तके
अश्वोंकी कर पकड़ लगाम ।
बने मार्गदर्शक लीलामय
प्रेम-सुधोदधि, जन-सुखधाम ॥

प्रेमी पार्थव्याजसे सबको
करुणाकर लोचन अभिराम।
शरणागतिका मधुर मनोहर
तत्त्व सुनाया सार्थ ललाम॥ ४॥
'मन्मना भव, भव मद्भक्तः,
मद्याजी, कर मुझे प्रणाम।
सत्य शपथयुत कहता हूँ प्रिय
सखे! मुझीमें ले विश्राम॥
छोड़ सभी धर्मोंको मेरी
एक शरण हो जा निष्काम।
चिंता मत कर, सभी पापसे
तुझे छुड़ा दूँगा प्रियकाम!!' ॥ ५॥
श्रीहरिके सुखमय मंगलमय
प्रण-वाक्योंकी स्मृति कर दीन!
चित्त! सभी चंचलता तजकर
चारु चरणमें हो जा लीन!

रसिकबिहारी मुरलीधर,
गीतागायकके हो आधीन।
त्रिभुवनमोहनके अतुलित
सौंदर्याम्बुधिका बन जा मीन ! ॥ ६ ॥

(७८) राग बागेश्री

मन सत-संगति नित कीजै ।
संत-मिलन त्रय-ताप नसावन, संतचरण चित दीजै ॥
संतन निकट नित्यप्रति जइये, हरि नामामृत पीजै ।
संतनि सकल भाँति नित सेइय, सब बिधि मुदित करीजै ॥
संतन महँ बिस्वास करिय नित, श्रद्धा अतिसय कीजै ।
संतहिं नित हरिरूप निहारिय, संत कहैं सोइ कीजै ॥
हरिको सकल मरम ते जानहिं, तिनसौं सब सुनि लीजै ।
सुनि-सुनि मनमहँ धारन कीजै, मन तासौं रँगि लीजै ॥
संत सुहृद जे पंथ बतावैं, तेहि पथ गमन करीजै ।
झटपट हरिके धाम पहुँचिये, प्रमुदित दरसन कीजै ॥



लीला

(७९) राग कामोद

स्याम मोहिं तुम बिनु कछु न सुहावै ।
जबतें तुम तजि ब्रज,गये मथुरा, हिय उथल्योई आवै ॥
बिरह बिथा सगरे तनु ब्यापी,तनिक न चैन लखावै ।
कल नहिं परत निमेष एक मोहि, मन-समुद्र लहरावै ॥
नँद-घर सूनो, मधुबन सूनो, सूनी कुंज जनावै ।
गोठ,बिपिन,जमुना-तट सूनो, हिय सूनो बिलखावै ॥
अति बिह्वल बृषभानुनंदिनी, नैननि नीर बहावै ।
सकुच बिहाइ पुकारि कहति सो,स्याम मिलैं सुख पावै॥

(८०) राग देशी

स्याम ! अब मत तरसाओजो !
मनमोहन नँदलाल, दयाकर दरस दिखाओजी ॥
ब्याकुल आज आपकी राधा, माधव आओजी ।
तव दरसन लगि तृषित दृगनको सुधा पियाओजी ॥
तुम बिन प्रान रहैं अब नाहीं, धाय बचाओजी ।
प्रानाधार ! प्रान चह निकसन, बेगि सिधाओजी ॥
राधा कहत, गये राधाके पुनि पछिताओजी ।
राधा बिना स्याम नहिं "राधा-कृष्ण" कुहाओजी ॥

(८१) राग भैरवी

ऊधौ ! तुम तो बड़े बिरागी ।
हम तो निपट गँवारि ग्वालिनीं, स्याम-रूप अनुरागी ॥
जेहि छिन प्रथम स्याम-छबि देखी, तेहि छिन हृदय समानी
निकसत नहिं अब कौनेहू बिधि, रोम-रोम उरझानी ॥
आठों जाम मगन मन निरखत स्याम मुरति निजमाहीं।
दृग नहिं पेखत अन्य वस्तु जग, बुद्धि बिचारत नाहीं ॥
ऊधौ ! तुम्हरो ग्यान निरंतर होउ तुमहिं सुखकारी ।
हम तौ सदा स्याम-रँग राचीं ताहि न सकहिं उतारी ॥

(८२)

बनहिं बन स्याम चरावत गैया ।
सुभग अंग सुखमाको सागर, कर बिच लकुट धरैया ।
पीत बसन दमकत दामिनि सम, मुरली अधर बजैया ॥
धावत इत उत दाऊके सँग, खेल करत लरिकैयाँ ।
गैयनके पाछे नित भाजत, नंदरायको छैया ॥
धन्य-धन्य वे ब्रजकी धूमरि धौरी कारी गैया ।
जिनहिं पियावत जल जमुना-तट ठाढ़ो आपु कन्हैया ॥

(८३) राग सारंग

(मारवाड़ी बोली)

ऊधो मधुपुरका बासी ।
म्हारो बिछड्यो स्याम मिलाय,
बिरहकी काट कठण फाँसी ॥
स्याम बिन चैन नहीं आवे ।
म्हारो जबसे बिछड्यो स्याम,
हीवड़ो उझल्यो ही आवे ॥
छाय रही व्याकुलता भारी ।
म्हारै स्याम-बिरहमैं आज,
नैनसैं रह्यो नीर जारी ॥
स्याम बिन ब्रज सूनो लागै ।
सूनी कुंज, तीर जमुनाको, सब सूनो लागै ॥
गोठ-बन स्याम बिना सूनो ।
म्हारै एक-एक पुळ जुग सम बीतै, बिरह बढै दूनो ॥
ऊधो ! अरज सुणो म्हारी ।
थारो गुण नहिं भूलाँ कदे,
मिलाद्यो मोहन बनवारी ॥

(८४) राग हमीर

बिदुर घर स्याम पाहुने आये ।
नख-सिख रुचिररूप मनमोहन,
कोटि मदन छबि छाये ॥
बिदुर न हुते घरहिमें तेहि छिन,
स्याम पुकारन लागे ।
बिदुर-घरनि नहाति उठि धाई,
नैन प्रेमरस पागे ॥
भूली बसन न्हात रहि जेहि थल,
तनु-सुधि सकल भुलाई ।
बोलति अटपट बचन प्रेमबस,
कदरी-फल ले आई ॥
छीलत डारत गूदो इत-उत,
छिलका स्याम खवावै ।
बारहिं बार स्वाद कहि-कहि हरि,
प्रमुदित भोग लगावै ॥
तनिक बेर महँ हरि-गुन गावत,
बिदुर घरहिं जब आये ।

देखि दरस सो कहत, 'अहह !
तैं छिलका स्याम खवाये ।।'
करतें केरा झटकि बिदुर
घरनी घरमाहिं पठाई ।
तनु-सुधि पाइ सलाज ससंकित,
बसन पहिरि चलि आई ।।
बिदुर प्रेमजुत छीलि छीलिकै,
केरा हरिहिं खवावै ।
कहत स्याम वह सरस मनोहर
स्वाद न इनमहँ आवै ।।
भूखो सदा प्रेमको डोलूँ
भगत-जनन गृह जाऊँ ।
पाइ प्रेमजुत अमिय पदारथ,
खात न कबहुँ अघाऊँ ।।

(८५)

हरि अवतरे कारागार ।
दिसि सकल भइँ परम निरमल अभ्र सुखमा-सार ।
लता-बिटप सुपल्लवित पुष्पित नमत फल-भार ।

सुखद मंद सुगंध सीतल बहत मलय-बयार ।
देवगन हरखत सुमन बरखत करत जयकार ॥
बिनय करत बिरंचि नारद सिद्ध बिबिध प्रकार ।
करत किंनर गान बहु गंधरब हरख अपार ॥
संख चक्र गदा नवांबुज लसत हैं भुज चार ।
भृगु-लता कौस्तुभ-सुसोभित, कांतिके आगार ॥
नौमि नीरद-नील नव तनु गले मुकता-हार ।
पीत पट राजत, अलक लखि अलिहु करत पुकार ॥
परम बिस्मित देखि दंपति छबिहिं अमित उदार ।
निरखि सुंदरता अपरिमित लजत कोटिन मार ॥

(८६)

नंदसुत चुपके माखन खात ।
ठाढ़ो चकित चहूँ दिसि चितवत, मंद-मंद मुसुकात ॥
मथनीमहँ कोमल कर डारे, भाजनकी ठहरात ।
जो पावत सो लेत ढीठ हठि, नैकहु नाहिं डेरात ॥
देखति दूरि ग्वालिनीं ठाढीं, मन धरिबेकी घात ।
स्याम-ब्रह्मकी माधुरि लीला निरखि-निरखि हरखात ॥

(८७) राग देश

स्यामने मुरली मधुर बजाई ।
सुनत टेर, तनु सुधि बिसारि सब गोपबालिका धाई ॥
लहँगा ओढ़ि, ओढ़ना पहिरे, कंचुकि भूलि पराई ।
नकबेसर डारे स्रवननमहँ, अदभुत साज सजाई ॥
धेनु सकल तृन चरन बिसार्‌यो ठाढ़ी स्रवन लगाई ।
बछुरनके थन रहे मुखनमहँ सो पय-पान भुलाई ॥
पसु-पंछी जहँ-तहँ रहे ठाढ़े मानो चित्र लिखाई ।
पेड़ पहाड़ प्रेमबस डोले, जड़ चेतनता आई ॥
कालिंदी-प्रबाह नहिं चाल्यो, जलचर सुधि बिसराई ।
ससिकी गति अवरुद्ध, रहे नभ देव बिमानन छाई ॥
धन्य बाँसकी बनी मुरलिया बड़ो पुन्य करि आई ।
सुर-मुनि दुरलभ रुचिर बदन नित राखत स्याम लगाई ॥

(८८) राग काफी

माधव ! हौं तुम्हरे संग जैहौं ।
तुम्हरे बिना न एक पल रहिहौं,
लोक-लाज कुलकानि नसैहौं ॥

बरजी नहिं रहिहौं काहूकी,
जो बाँधहिं तो बंधन खैहौं ।
जड़ तनु तजिहौं, यह मन,
प्रिय सँग प्रानहिं अवसि पठैहौं ॥
मिलिहौं आइ तहाँ प्रियतममें,
जिमि सागर बिच लहर, समैहौं ।
स्याम बदनमहँ स्याम रंग रचि,
स्यामरूप लहि अति सुख पैहौं ॥

(८९) राग आसावरी

नाचत गौर प्रेम-अधीर ।
भूलि सुधि हरि-नाम टेरत, बहत नैननि नीर ॥
पान करि सुचि प्रेम-अमृत, मत्त पुलकित अंग ।
भगत-गन नाचत सकल मिलि बजत ताल मृदंग ॥
परम पावन नामकी धुनि, गूँजती आकास ।
बिपुल अघ संसारके पल माहिं होत बिनास ॥

(९०) राग कामोद

स्याम मोरे ढिगतें कबहुँ न जावै ।
कहा कहूँ सखि ! गैल न छाड़ै, जित जाऊँ तित धावै ॥
गैया दुहत गोद आ बैठै, दूध-धार पी जावै ।
दही मथत नवनी लेबेकौं मटकी माहिं समावै ॥
रोटी करत आइ चौकामैं, ऊधम अमित मचावै ।
जेंवत बेर संग आ बैठै, माल-माल गटकावै ॥
सखियन सँग बतरात आइ सो पंचराज बनि जावै ।
मुरली मधुर बजाय देखु सखि, मोहन हमहिं रिझावै ॥
सोवत समै सेज आ पौढ़ै, गृह-स्वामी बनि जावै ।
स्वलप निंदरिया बीच सपनमहँ, माधुरि-रूप दिखावै ॥
तदपि न बरजत बनै ताहि सखि, चित अति ही सुख पावै
बारहिं बार निहारि चंद्रमुख, अंतर अति हुलसावै ॥

(९१) राग जैमिनी कल्याण

स्याम तव मूरति हृदय समानी ।
अँग-अँग व्यापी, रग-रग राँची, रोम-रोम उरझानी ॥
जित देखौं तित तू ही दीखत, दृष्टि कहा बौरानी ।
स्रवन सुनत नित ही बंसी-धुनि, देह रही लपटानी ॥

स्याम-अंग सुचि सौरभ मीठी, नासा तेहि रति मानी ।
जिभ्या सरस मनोहर मधुमय, हरि-जूठन रस-खानी ॥
ऊधौ कहत सँदेस तिहारो, हमहिं बनावत ग्यानी ।
कहु थल जहाँ ग्यानकों राखैं, कहा मसखरी ठानी ॥
निकसत नाहिं हृदयतें हमरे बैठ्यो रहत लुकानी ।
ऊधौ ! स्याम न छाड़त हमकों, करत सदा मनमानी ॥

(९२)

धन्य-धन्य ब्रजकी नर-नारी ।
जिन्हके आँगन नाचत नितप्रति
मोहन करतल दै दै तारी ॥
परम प्रिया मनमोहनजूकी
प्रेमपगी रस-बिषय गँवारी ।
जिन्हके हाथ खात माखन दधि,
लाड़ लड़ावत दै दै गारी ॥
मुरली-धुनि सुनि भागति सगरी
लोक-लाज गृह-काज बिसारी ।
चाहत चरन-धूलि नित तिन्हकी
दीन अकिंचन प्रेम-भिखारी ॥

(९३) राग पूरिया

प्रभु ! मैं नहिं नाव चलावौं ।
तव पद-रज नर-करनि मूरि प्रभु !
महिमा अमित कहाँ लगि गावौं ?
पाहन छुवत नारि भइ पावनि,
काठ पुरातनकी यह नावौं ।
परसत रज मुनि-नारि बनै यह,
मैं पुनि असि नौका कहँ पावौं ॥
मैं अति दीन-दरिद्र, कुटुँब बहु,
यहि नौकातें सबहिं निभावौं ।
जो यह उड़ै, जीविका बिनसै,
केहि बिधि पुनि परिवार चलावौं ॥
अनुमति होइ तो लेइ कठौता,
सुरसरि-जल भरि प्रभुपहँ लावौं ।
पद पखारि, रज धोइ भलीबिधि,
करि चरनामृत पाप नसावौं ॥
प्रभु-चरननकी सपथ नाथ ! मैं
अन्य भाँति नहिं नाव चढ़ावौं ।
लखन रिसाइ तीर जो मारैं,

निबल, पकरि पद प्रान गवावौं ॥
प्रेम भरे, अति सरल-सुहावन,
अटपट बचन सुने रघुरावौं ।
करुनानिधि हँसि अनुमति दीन्ही,
केवट कह्यो, पार लै जावौं ॥

(९४) राग हमीर

प्रभु बोले मुसुकाई ।
जातें तोरि नाव रहि जावे,
सोइ जतन करु भाई ॥
पाँव पखारु, लाइ गंगाजल,
अब मत बिलँब लगाई ।
सुनत बचन तेहि छिन सो दौरयो,
मनमहँ अति हरखाई ॥
भरयो कठौता गंगाजलसों,
सब परिवार बुलाई ।
प्रभु-पद आइ पखारन लाग्यो,
उर आनँद न समाई ॥
सुरन बिलोकि प्रेम-करुना अति,
नभ दुंदुभी बजाई ।

केवट भाग्य सराहिं अमित बिधि,
सुमन बृष्टि झरि लाई ॥
पद पखारि, सब लै चरनामृत,
पुरुखन पार लँघाई ।
सीता-लखन सहित रघुनंदन,
हरषित नाव चलाई ॥

(९५) राग तिलंग

ऊधौ ! सो मनमोहन रूप ।
जो हम निरख्यो सदा नैन भरि, सुंदर अतुल, अनूप ॥
सिव-बिरंचि,सनकादिक,नारद,ब्रह्म,बिदित,जगजाने ।
सुरगुरु सुरपति जेहि देखन हित रहत सदा ललचाने ॥
बेद-बुद्धि कुंठित भइ बरनत, 'नेति-नेति' कहि गायो ।
सारद सेस सहसमुख निसिदिन गावत, पार न पायो ॥
जेहि लगि ध्यान-निरत जोगी मुनि,नित जप-तप ब्रत-धारी
तदपि सो स्याम त्रिभंग मुरलिधर सकत न नैन निहारी ॥
सोइ प्रभु दधि-माखन हित नित प्रति आँगन हमरे आये ।
तनिक-तनिक दधि-नवनी दै दै हम बहु नाच नचाये ॥
ऊधौ ! सोइ माधुरी मूरति अंतर दृगन समाई ।
ग्यान-बिराग तिहारो बोरौ कालिंदी महँ धाई ॥

प्रेम

(९६) लावनी

(मारवाड़ी बोली)

अब तो कुछ भी नहीं सुहावै,
　　एक तुँ ही मन भावै है।
तनै मिलणनै आज मेरो
　　हिवड़ो उझल्यौ आवै है॥
तड़फ रह्यो ज्यूँ मछली जळ बिन,
　　अब तूँ क्यूँ तरसावै है।
दरस दिखाणै मैं देरी कर
　　क्यूँ अब और सतावै है ! ॥ १ ॥
पण, जो इसी बातमैं तेरो
　　चित राजी होतो होवै।
तौ कोई भी आँट नहीं, मनै
　　चाहे जितणो दुख होवै॥
तेरै सुखसैं सुखिया हूँ मैं,
　　तेरे लिये प्राण सेवै।
मेरी खातर प्रियतम ! अपणै
　　सुखमैं मत काँटा बोवै॥ २ ॥

पण या निश्चै समझ, तनैं
मिलणैकी खातर मेरा प्राण ।
छिन-छिन मैं व्याकुल होवै है,
दरसणकी है भारी टाण ॥
बाँध तुड़ाकर भाग्या चावै,
मानै नहीं किसीकी काण ।
आठूँ पहर उड्या सा डोलै,
पलक-पलककी समझै हाण ॥ ३ ॥
पण प्यारा ! तेरी राजी मैं
है नित राजी मेरो मन ।
प्राणाधिक, दोनूँ लोकाँको
तूँ ही मेरो जीवन-धन ॥
नहीं मिलै तो तेरी मरजी,
पण तन-मन तेरै अरपन ।
लोक-वेद है तूँ ही मेरो,
तूँ ही मेरो परम रतन ॥ ४ ॥
चातककी ज्यूँ सदा उडीकूँ
कदे नहीं मुँहनैं मोड़ूँ ।

दुख देवै, मारै, तड़फावै,
तो भी नेह नहीं तोड़ूँ ॥
तरसा-तरसाकर जी लेवै
तो भी तनै नहीं छोड़ूँ ।
झाँकूँ नहीं दूसरी कानी
तेरेमें ही जी जोड़ूँ ॥ ५ ॥

(९७) राग लावनी

मिलनेको प्रियतमसे जिसके प्राण कर रहे हाहाकार ।
गिनता नहीं मार्गकी कुछ भी दूरीको वह किसी प्रकार ॥
नहीं ताकता किंचित भी शत-शत बाधा-विघ्नोंकी ओर ।
दौड़ छूटता जहाँ बजाते मधुर वंशरी नंदकिशोर ॥
मिली हुई जो कभी भाग्यवश उसको हैं आँखें होतीं ।
वही जानता कीमत, जो उस रूप-माधुरीकी होती ॥
कुछ भी कीमत हो, परंतु है रूपरसिक जन जो होता ।
दौड़ पहुँचता लेनेको तत्काल, नहीं पलभर खोता ॥



अद्वैत

(९८) राग भैरवी

देख दुःखका वेष धरे मैं नहीं डरूँगा तुमसे, नाथ।
जहाँ दुःख वहाँ देख तुम्हें मैं पकड़ूँगा जोरोंके साथ ॥
नाथ! छिपा लो तुम मुँह अपना, चाहे अति अँधियारेमें।
मैं लूँगा पहचान तुम्हें इक कोनेमें, जग सारेमें ॥
रोग-शोक, धनहानि, दुःख, अपमान घोर, अतिदारुण क्लेश
सबमें तुम, सब ही है तुममें, अथवा सब तुम्हरे ही वेश ॥
तुम्हरे बिना नहीं कुछ भी जब, तब फिर मैं किसलिये डरूँ।
मृत्यु-साज सज यदि आओ तो, चरण पकड़ सानंद मरूँ ॥
दो दर्शन चाहे जैसा भी दुःख-वेष धारणकर नाथ।
जहाँ दुःख वहाँ देख तुम्हें, मैं पकड़ूँगा जोरोंके साथ ॥

(९९) राग भैरवी

सूर्य-सोममें, वायु-व्योममें, सलिल-धार, धरनीमें तुम!
सुत-कलत्रमें, पुष्प-पत्रमें, स्वर्ण-अश्म-अरणीमें तुम!
शत्रु-मित्रमें, सुख-अमर्षमें, अनल अतल सागरमें तुम!
सबमें, सभी दिशामें छाये केवल हे नटनागर! तुम!

(१००) राग पहाड़ी

इस अखिल विश्वमें भरा एक तू ही तू।
तुझमें मुझमें 'तू', मैं 'तू' तू 'तू' ही तू॥
नभमें तू, जल थल वायु अनलमें भी तू।
मेघध्वनि, दामिनि, वृष्टि प्रबलमें भी तू॥
सागर अथाह, सरिता-प्रवाहमें भी तू।
शशि-शीतलता, दिनकर-प्रदाहमें भी तू॥
वन सघन, पुष्प-उद्यान मनोहरमें तू।
प्रस्फुटित कुसुम-रस-लीन भ्रमरमें भी तू॥
है सत्य-असत, विष-अमृत, विनय-मदमें तू।
शुभ क्षमा-तेज, अति विपद-सुसंपदमें तू॥
मृदु हास्य सरल, अति तीव्र रुदन-रवमें तू।
चिरशांति, क्रांति, अति भीषण विप्लवमें तू॥
है प्रकृति-पुरुष, पुरुषोत्तम-मायामें तू।
अति असह धूप, सुखदायक छायामें तू॥

नारी-अंतर, शिशु सुखद बदनमें भी तू ।
कामारि, कुसुमसरपाणि मदनमें भी तू ॥
घन अंधकार, उज्ज्वल प्रकाशमें भी तू ।
जड़ मूढ़ प्रकृति, अतिमति-विकासमें भी तू ॥
है साध्वी घरनी, कुलटा-गणिकामें भी तू ।
है गुँथा सूत, माला, मणिकामें भी तू ॥
तू पाप-पुण्यमें, नरक-स्वर्गमें भी तू ।
पशु-पक्षि, सुरासुर, मनुजवर्गमें भी तू ॥
है मिट्टी-लोह, पषाण-स्वर्णमें भी तू ।
चतुराश्रममें तू, चतुर्वर्णमे भी तू ॥
है धनी-रंक, ज्ञानी-अज्ञानीमें तू ।
है निरभिमानमें, अति अभिमानीमें तू ॥
है बाल-वृद्ध, नर-नारि, नपुंसकमे तू ।
अति करुणहृदयमें, निर्दय हिंसकमें तू ॥
है शत्रु-मित्रमें, बाहरमें घरमें तू ।
है ऊपर, नीचे, मध्य, चराचरमें तू ॥
'हाँ' में, 'ना' मे तू, 'तू' में, 'मैं' में, 'तू' तू ।
हूँ तू, तू तू, तू तू तू, बस तू ही तू ॥

(१०१) राग बहार

देख एक तू ही तू ही तू । सर्वव्यापक जग तू ही तू ॥
सत, चित, घन आनंद नित, अज, अव्यक्त, अपार ।
अलख, अनादि, अनंत, अगोचर, पूर्ण विश्व-आधार ।
एकरस, अव्यय तू ही तू ॥ सर्वव्यापक०॥
सत्यरूपसे जगत सब, तेरा ही विस्तार ।
जग माया-कल्पित है सारा तव संकल्पाधार ।
रचयिता-रचना तू ही तू ॥ सर्वव्यापक० ॥
तुझ बिन दूजी वस्तु नहिं, किंचित भी संसार ।
सूत सूत-मणियोंमें गूँथा, जल-तरंगवत सार ।
भरा एक तू ही तू ही तू ॥ सर्वव्यापक० ॥
मात-पिता-धाता तू ही, वेदवेद्य ओंकार ।
पावन परम पितामह तू ही, सुहृद शरणदातार ।
सृजत, पालत, संहारत तू ॥ सर्वव्यापक०॥
क्षर, अक्षर, कूटस्थ तू, प्रकृति-पुरुष तव रूप ।
मायातीत, वेदवर्णित पुरुषोत्तम अतुल, अरूप ।
रूपमय सकल रूप ही तू ॥ सर्वव्यापक० ॥
मोह-स्वप्नको भंग कर, निज रूपहि पहिचान ।
नित्य सत्य आनंद बोध घन निजमें निजको जान ।
सदा आनंदरूप एक तू ॥ सर्वव्यापक० ॥

(१०२) राग बागेश्री

(१)

परम प्रिय मेरे प्राणाधार !
स्वजनोंसे सम्बन्ध छूटते मैं निराश हो घबराया ।
पर निरुपाय, विवश हो तत्क्षण गृह नवीनमें मैं आया ॥
लगा पुरातन चिर नूतन सब, 'मेरापन' सबमें पाया ।
विस्मृत हुआ पुरातन, नूतनको ही मैंने अपनाया ॥
सबल, सुन्दर, सुसंगठित देह ।
जनक-जननीका अविरल स्नेह ॥
प्रियाका मधुर वचन, मृदुहास ।
सरल संततिका रम्य विकास ॥
कर रहा नित सुखका संचार । परम प्रिय मेरे प्राणाधार !

(२)

पिता चले, जननी भी बिछुड़ी, शक्ति और सौंदर्य गया ।
पत्नी भी चल बसी, शेष वयमें उसने भी न की दया ॥
धीरे-धीरे पुत्रोंसे भी सारा नाता टूट गया ।
पूर्वजन्मकी भाँति पुनः यमदूतोंके आधीन भया ॥
हुआ परवश, अधीर, बेहाल ।
चल सकी एक न मेरी चाल ॥
भटकते बीता अगणित काल ।
विविध देहोंमें क्षुद्र-विशाल ॥
अनोखा यह कैसा व्यवहार । परम प्रिय मेरे प्राणाधार !

(३)

बाल, युवा, वृद्धावस्था हैं तीनों पूरी हो जाती ।
मरण अनंतर पुनर्जन्मकी संतत है बारी आती ॥
घूम रही मायाचक्की, यह कभी नहीं रुकने पाती ।
पर 'मैं-मैं' की एक भावना कभी नहीं मेरी जाती ॥
भले हो कोई कैसा स्वाँग ।
पड़ गयी सब कूँओंमें भाँग ॥
इसीसे यह 'मैं'-'मैं' की राग ।
गा रहा, कभी न सकता त्याग ॥
कौन यह 'मैं', कैसा आकार ? परम प्रिय मेरे प्राणाधार !

(४)

'मैं-मैं' कहता भटक रहा, भवसागरकी चोटें सहता ।
नहीं परन्तु जानता 'मैं' है कौन तथा कैसे कहता ?
यदि शरीर ही 'मैं' होता, तो सबमें 'मैं' कैसे रहता ?
होता 'मैं' मन-इन्द्रिय तो, इनको मेरे कैसे कहता ?
सुन रहा छिपकर सारी बात ।
देखता सभी घात-प्रतिघात ॥

हो गयी उससे अब पहचान।
वही मैं, भेद गया हूँ जान॥
उसीमें समा रहा तू यार! परम प्रिय मेरे प्राणाधार!

(५)

समझा, इस 'मैं' में औ तुझमें किसी तरहका भेद नहीं।
इस विशाल 'मैं' की व्यापकतामें कोई विच्छेद नहीं॥
तुझसे भरे हुए इस 'मैं' में हुआ कभी भी खेद नहीं।
सदानंद-परिपूर्ण, एकरस, कोई भेदाभेद नहीं॥
बिगड़ता-बनता यह संसार।
किंतु 'तू' चिर-नूतन, सुकुमार॥
'मैं' तथा 'तू' का यह उपचार।
सभी कुछ है तेरा विस्तार॥
धन्य तू औ तेरा व्यापार! परम प्रिय मेरे प्राणाधार!

(१०३) गजल

प्रियतम! न छिप सकोगे, चाहे सो वेष धर लो।
अब हो चुकी है मुझको, पहचान वह तुम्हारी॥
ढूँढ़ा तुम्हें अभीतक, मंदिर या मस्जिदोंमें।

पर देख तो न पाया वह माधुरी पियारी ॥
जिसने बताया जैसे, वैसे ही ढूँढ़ा मैंने ।
भटका, कहीं न दीखे, चैतन्य ! चित्तहारी ॥
बस, बेतरह हराया, आया जो पास मेरे ।
तुमको बता-बताकर, शब्दोंकी मार मारी ॥
पर, देखकर न तुमको, था सोचता यों मनमें ।
है वा नहीं है जगमें सत्ता कहीं तुम्हारी ॥
संदेह जब यों होता, झाँकी-सी मार जाते ।
तिरछी नज़रसे हँसकर, छिपते तुरत बिहारी ! ॥
बिजली-सी दौड़ जाती, सन्-सन् शरीर करता ।
होतीं थीं इन्द्रियाँ सब, प्रखर प्रकाशकारी ॥
तब दीखता था मुझको, फैला प्रकाश सबमें ।
प्राणेश ! बस, तुम्हारा, वह दिव्य मोदकारी ॥
आँधी-सी एक आती, धन-कीर्ति-कामिनीकी ।
सारा प्रकाश ढकता, उस तमसे अंधकारी ॥
आ-आके इस तरह तुम, यों बार-बार जाते ।
मुझको न थी तुम्हारी पहचान पुण्यकारी ॥
आँखोंमें बैठ करके, तुम देखते हो सबको ।
कानोंमें बैठ सुनते तुम शब्द सौख्यकारी ॥

नाकोंसे गंध लेते, रसनासे चाखते तुम।
हो स्पर्श तुम ही करते, लीला विचित्र-कारी॥
प्राणोंमें, चित्त-मनमें, मतिमें, अहंमें, तूँमें।
सबमें पसार करके तुम खेलते खिलारी॥
बेढब नकाबपोशी रक्खी है सीख तुमने।
अंदर समाके सबके छिपते, अजीब यारी॥
जिसको दिखाया तुमने परदा हटाके अपना।
वह रूप-रँग अनोखा, प्रेमोन्मत्त-कारी॥
फिर भूलता नहीं वह, औ भूल भी न सकता।
पहचान नित्य होती पारस्परिक तुम्हारी॥
आँधी कभी न आती, आँखें न चौंधियातीं।
वह दिव्य दृष्टि पाकर, होता सदा सुखारी॥
सुख-दुःख, जय-पराजय, तम-तेज, यश-अयशमें।
दिखती उसे सभीमें छबि मोहिनी तुम्हारी॥
फिर देखता वह तुमसे सारा जगत भरा है।
अपनी जरा-सी सत्ता वह देखता, न न्यारी॥
तुम हो समाये सबमें, वह है समाया तुममें।
भय-भेद-भ्रांति मिटती उस एक छनमें सारी॥

(१०४) राग देशी खमाज

स्वागत ! स्वागत ! आओ प्यारे ।
दर्शन दो, नयनोंके तारे ॥

बालककी मधुरी हाँसीमें । मोहनकी मीठी बाँसीमें ॥
मित्रोंकी निःस्वार्थ प्रीतिमें । प्रेमीगणकी मिलन-रीतिमें ॥
नारीके कोमल अंतरमें । योगीके हृदयाभ्यन्तरमें ॥
वीरोंके रणभूमि-मरणमें । दीनोंके संताप-हरणमें ॥
कर्मठके कर्म-प्रवाहमें । साधकके सात्त्विक उछाहमें ॥
भक्तोंके भगवान्-शरणमें । ज्ञानवान्के आत्मरमणमें ॥
संतोंकी शुचि सरल भक्तिमें । अग्निदेवकी दाह-शक्तिमें ॥
गंगाकी पुनीत धारामें । पृथ्वी-पवन, व्योम-तारामें ॥
भास्करके प्रखर प्रकाशमें । शशधरके शीतल विकासमें ॥
कोकिलके कोमल सुस्वरमें । मत्त मयूरी केका-रवमें ॥
विकसित पुष्पोंकी कलियोंमें । कालेनखराले अलियोंमें ॥
सबमें तुम्हें देखते सारे । पर न पकड़ पाते, मतवारे ॥
निज पहचान बता दो प्यारे । छिपना छोड़ो, जग उजियारे

स्वागत ! स्वागत ! आओ प्यारे !
मेरे जीवनके 'ध्रुवतारे' ॥

(१०५) लावनी

सौंप दिये मन-प्राण उसीको,
मुखसे गाते उसका नाम।
कर्माकर्म चुकाकर सारे
चलते हैं अब उसके धाम॥
इंद्रियगण लेकर विषयोंको
मरा करें इच्छा अनुसार।
हम तो हैं अनुगत उसके ही,
वही हमारा प्राणाधार॥
प्रेम उसीके-से प्रेमिक बन,
गाते सब उसका गुण-गान।
उसकी नासा पुष्प उसीके-से
लेती नित उसकी घ्राण॥
उसके प्राणोंकी व्याकुलता
सब प्राणोंमें जाग रही।
इसी हेतु बैठे योगासन
वृत्ति उसीमें लाग रही॥
उसके ही रससे रसिका बन
रसना हो गइ दीवानी।

विषयोंके रस विरस हुए सब,
नहीं कर सकें मनमानी॥
आँख उसीकी, देख रहीं नित
उसका रूप परम सुंदर।
कान उसीके सुनते उसका
सदा सुरीला कंठस्वर॥
देह उसीकी करती नित
आवेग-भरा परसन उससे।
मन-प्राण भर उठे, दीखता
सारा जगत भरा उससे॥
सभी भुलाकर सोच रहा वह
कहाँ ? कौन ? मेरा मनचोर।
हृदय-सलिलके अगाध तलमें
खोजूँगा, यदि पाऊँ छोर॥
जब वह अपने प्राणोंको
मेरे प्राणोंमें दिखलाता।
दोनों कूल डूब जाते हैं,
कुछ भी नजर नहीं आता॥

माता-पिता वही हम सबका,
भाई-बंधु, पुत्र-दारा।
है सर्वस्व वही सबका बस,
उससे भरा विश्व सारा॥
है वह जीवनसखा हमारा,
है वह परम हमारा धन।
अन्तस्तलमें बैठे हैं टुक
करनेको उसके दर्शन॥
जब वह दोनों भुजा उठाकर,
अपनी ओर बुलाता है।
सब सुख तजकर मन उसके ही
पीछे दौड़ा जाता है॥
सब कुछ भूल नाच उठते हैं,
हँसना औ रोना तजकर।
चरण-कूलकी तरफ दौड़ते,
भग्न जीर्ण नौका लेकर॥
आशा सकल बहाकर उस
प्यारेके अरुण चरणतलमें।

कूद पड़ेंगे, डूबें चाहे
तर निकलें कूलस्थलमें ॥
इस जगके जो कुछ भी सुख हैं,
सो सब रहें उसीके पास ।
अरुण चरणके स्पर्शमात्रसे,
मिटी हमारी सारी आस ॥
किसी वस्तुकी चाह नहीं है,
मिटा चाहना, पाना, सब ।
बैठे हैं भव-तीर, भरोसा
किये युगल-चरणोंका अब ॥
अब तो बंध-मोक्षकी इच्छा
व्याकुल कभी न करती है ।
मुखड़ा ही नित-नव बंधन है,
मुक्ति चरणसे झरती है ॥
चाहे अपने पास बिठा ले,
चाहे दूर फेंक देवें ।
दूर रहें या पास रहें, हम
संतत चरणमूल सेवें ॥

(१०६) राग गौड मल्हार

सकल जग हरिको रूप निहार ।
हरि बिनु विश्व कतहुँ कोउ नाहीं, मिथ्या भ्रम संसार ॥
अलख-निरंजन,सब जग व्यापक,सब जगको आधार ।
नहिं आधार, नाहिं कोउ हरिमहँ, केवल हरि-विस्तार ॥
अति समीप, अति दूर, अनोखे, जगमहँ, जगतें पार ।
पय-घृत, पावक-काष्ठ, बीजमहँ,तरु-फल पल्लव-डार ॥
तिमि हरि व्यापक अखिल विश्वमहँ,आनँद पूर्ण अपार ।
एहि बिधि एक बार निरखत ही, भव-बारिधि हो पार ॥

(१०७) राग केदारा

देख निज नित्य निकेतन द्वार ।
भूला निज निर्मल स्वरूपको, भूला कुल-व्यवहार ।
फूला, फँसा फिर रहा संतत, सहता जग-फटकार ॥
पर-पुर, पर-घरमें प्रवेश कर, पाला पर-परिवार ।
पड़ा पाँच चोरोंके पल्ले, लुटा, हुआ लाचार ॥
अब भी चेत, ग्रहणकर सत्पथ, तज माया-आगार ।
उज्ज्वल प्रेम-प्रकाश साथ ले, चल निज गृह सुखसार ॥

शम-दमादिसे तुरत निधनकर काम-क्रोध बटमार।
सेवन कर पुनीत सत-संगति पथशाला श्रमहार॥
श्रीहरिनाम शमन-भय-नाशक निर्भय नित्य पुकार।
पातकपुंज नाश हों सुनकर 'हरि-हरि-हरि' हुंकार॥
आश्रय कर शरणागतवत्सल प्रभु-पद-कमल उदार।
निज घर पहुँच, नित्य चिन्मय बन, भूमानंद अपार॥

(१०८) लावनी

भीषण तमपरिपूर्ण निशीथिनि,
निविड़ निरर्गल झंझावात।
नभ घनघोर महारवपूरित,
विकट, विघाती विद्युत्पात॥
सागर-वक्ष क्षुब्ध-उल्लोलित,
क्षित-क्षितिधर क्षत, कंपितगात।
प्रलय-शिखा पावक अप्रतिहत
त्रिभुवन त्रस्त, सहत अभिघात॥
कैसा यह भीषण वेश!
काँपता जगत्, न कोई शेष!

बचा, हुआ निर्भय, जिसने उस
'प्रियतमको पहचान लिया'।
धन्य वेशधारिन् ! बस, मैंने
'छिपे हुएको जान लिया'॥ १ ॥

विस्तृत अति दारिद्र्य, रोग-
पीड़ित, अपमानित दुःसहनीय।
त्यक्त-बंधु, जग-हसित, श्रमिततनु,
भ्रमित, वेदना दुर्दमनीय॥
एकमात्र सुत-शव निपतित
संमुख प्राणोपम अति कमनीय।
हा! हा! रव रत, विगत शांति-सुख,
शोकसरित-गत, नहिं कथनीय॥
नहिं सुख-स्वप्नका लेश!
निदारुण महाभयानक क्लेश!
आवृत वदन निरखकर जिसने
'प्रियतमको पहचान लिया'।
धन्य वेशधारिन् ! बस, मैंने
'छिपे हुएको जान लिया'॥ २ ॥

अन्नहीन तन, मृतप्राय मन,
वस्त्राभाव अनावृत देह।
अबला अवलंबनविहीन, नित
घृणा, दोषदर्शन, संदेह॥
स्वजनहीन, अति दीन-छीन,
जग वैरभावयुत विगतस्नेह।
दलित,स्खलित,पतित,निष्कासित,
देश-जाति-धन-जन-सुत-गेह ॥
रह गया निपट अकेला शेष !
दिगम्बर शुष्क अस्थि अवशेष !
रुद्ररूप दर्शनकर जिसने
'प्रियतमको पहचान लिया'।
धन्य वेशधारिन् ! बस, मैंने
'छिपे हुएको जान लिया'॥ ३ ॥

(१०९)

ज्यों ज्यों मैं पीछे हटता हूँ
त्यों त्यों तुम आगे आते।
छिपे हुए परदोंमें अपना
मोहन मुखड़ा दिखलाते॥

पर मैं अंधा ! नहीं देखता
परदोंके अंदरकी चीज़।
मोह-मुग्ध मैं देखा करता
परदे बहुरंगे नाचीज़॥ १॥

परदोंके अंदरसे तुम
हँसते प्यारी मधुरी हाँसी।
चित्त खींचनेको तुम तुरत
बजा देते मीठी बाँसी॥

सुनता हूँ, मोहित होता,
दर्शनकी भी इच्छा करता।
पाता नहीं देख, पर, जडमति !
इधर-उधर मारा फिरता॥ २॥

तरह तरहसे ध्यान खींचते
करते विविध भाँति संकेत।
चौकन्ना-सा रह जाता हूँ,
नहीं समझता मूर्ख अचेत॥

तो भी नहीं ऊबते हो तुम,
परदा जरा उठाते हो।

धीरेसे संबोधन करके
अपने निकट बुलाते हो ॥ ३ ॥
इतनेपर भी नहीं देखता,
सिंह-गर्जना तब करते ।
तन-मन-प्राण काँप उठते हैं,
नहीं धीर कोई धरते ॥
डरता, भाग छूटता, तब
आश्वासन देकर समझाते ।
ज्यों ज्यों मैं पीछे हटता हूँ
त्यों त्यों तुम आगे आते ॥ ४ ॥

(११०)

विश्व-वाटिकाकी प्रति क्यारीमें
क्यों नित फिरता माली !
किसके लिये सुमन चुन-चुनकर
सजा रहा सुन्दर डाली ॥
क्या तू नहीं देखता इन
सुमनोंमें उसका प्यारा रूप ।
जिसके लिये विविध विधिसे है
हार गूँथता तू अपरूप ॥

बीजांकुर शाखा-उपशाखा,
क्यारी-कुंज, लता-पत्ता ।
कण-कणमें है भरी हुई
उस मोहनकी मधुरी सत्ता ॥
कमलोंका कोमल पराग
विकसित गुलाबकी यह लाली ।
सनी हुई है उससे सारे
विश्व-बागकी हरियाली ॥
मधुर हास्य उसका ही पाकर
खिलती नित नव-नव कलियाँ ।
उसकी मंजु मत्तता पाकर
भ्रमर कर रहे रँगरलियाँ ॥
पाकर सुस्वर कंठ उसीका
विहग कूजते चारों ओर ।
देख उसीको मेघरूपमें
हर्षित होते चातक मोर ॥
हार गूँथकर कहाँ जायगा
उसे ढूँढ़ने तू माली ?

देख, इन्हीं सुमनोंके अंदर
उसकी मूरति मतवाली ॥
रूप-रंग, सौरभ—परागमें
भरा उसीका प्यारा रूप ।
जिसके लिये इन्हें चुन-चुनकर
हार गूँथता तू अपरूप ॥

(१११) संसार-नाटक

अनोखा अभिनय यह संसार !
रंगमंचपर होता नित नटवर-इच्छित व्यापार ॥१ ॥
कोई है सुत सजा, किसीने धरा पिताका साज ।
कोई स्नेहमयी जननी बन करता नटका काज ॥ २ ॥
कोई सज पत्नी, पति कोई, करें प्रेमकी बात ।
कोई सुहृद बना, वैरी बन कोई करता घात ॥ ३ ॥
कोई राजा, रंक बना, कोई कायर, अति शूर ।
कोई अति दयालु बनता, कोई हिंसक अति क्रूर ॥ ४ ॥
कोई ब्राह्मण, शूद्र, श्वपच है, कोई बनता मूढ़ ।
पंडित परम स्वाँग धर कोई करता बातें गूढ़ ॥ ५ ॥

कोई रोता हँसता कोई, कोई है गंभीर।
कोई कातर बन कराहता, कोई धरता धीर ॥ ६ ॥
रहते सभी स्वाँग अपनेके सभी भाँति अनुकूल।
होती नाश पात्रता जो किंचित् करता प्रतिकूल ॥ ७॥
मनमें सभी समझते हैं अपना सच्चा संबंध।
इसीलिये आसक्ति नहीं कर सकती उनको अंध ॥८॥
किसी वस्तुमें नहीं मानते कुछ भी अपना भाव।
रंगमंचपर किन्तु दिखाते तत्परतासे दाव ॥९॥
इसी तरह जगमें सब खेलें खेल सभी अविकार।
मायापति नटवर नायकके शुभ इंगित अनुसार ॥१०॥



संत-महिमा

(११२) राग बसन्त

संत महा गुनखानी ।
परिहरि सकल कामना जगकी,राम-चरन रति मानी ॥
परदुख दुखी सुखी परसुखतें,दीन-बिपति निज जानी ।
हरिमय जानि सकल जग सेवत उर अभिमान न आनी ॥
मधुर, सदा हितकर, प्रिय,साँचे बचन उचारत बानी ।
बिगतकाम,मद-मोह-लोभ नहिं,सुख-दुख सम कर जानी
राम-नाम पीयूष-पान-रत, मानद, परम अमानी ।
पतितनको हरिलोक पठावन जग आवत अस ग्यानी ॥



ब्राह्मण और बिच्छूकी कथा

(११३) लावनी

विश्वपावनी बाराणसिमें
संत एक थे करते वास ।
राम-चरण-तल्लीन-चित्त थे,
नाम-निरत, नय-निपुण, निरास ॥ १ ॥
नित सुरसरिमें अवगाहन कर,
विश्वेश्वर-अर्चन करते ।

क्षमाशील, पर-दुख-कातर थे,
नहीं किसीसे वे डरते ॥
एक दिवस श्रीभागीरथिमें
ब्राह्मण विदग्ध नहाते थे।
दयासिंधु देवकिनंदनके
गोप्य गुणोंको गाते थे ॥
देखा, एक बहा जाता है
वृश्चिक जल-धाराके साथ।
दीन समझकर उसे उठाया
संत विप्रने हाथों-हाथ ॥ २ ॥
रखकर उसे हथेलीपर फिर,
संत पोंछने लगे निशंक।
खल, कृतघ्न, पापी वृश्चिकने
मारा उनके भीषण डंक ॥
काँप उठा तत्काल हाथ,
गिर पड़ा अधम वह जलके बीच।
लगा डूबने अथाह जलमें
निज करनीवश निष्ठुर नीच ॥ ३ ॥

देखा मरणासन्न, संतका
चित करुणासे भर आया।
प्रबल वेदना भूल उसे फिर
उठा हाथपर, अपनाया॥
ज्यों ही सम्हला, चेत हुआ,
फिर उसने वही डंक मारा।
हिला हाथ, गिर पड़ा, बहाने
लगी उसे जलकी धारा॥ ४॥
देखा पुनः संतने उसको
जलमें बहते दीन-मलीन।
लगे उठाने फिर भी ब्राह्मण
क्षमामूर्ति प्रतिहिंसाहीन॥
नहा रहे थे लोग निकट सब,
बोले, 'क्या करते हैं आप!
हिंसक जीव बचाना कोई!
धर्म नहीं, है पूरा पाप'॥ ५॥
चक्खा हाथों-हाथ विषम फल,
तब भी करते हैं फिर भूल।

धर्म-कर्मको डुबा चुका
भारत इस कायरताके कूल ॥
'भाई ! क्षमा, नहीं कायरता,
यह तो वीरोंका बाना ।
स्वल्प महापुरुषोंने है
इसका सच्चा स्वरूप जाना ॥ ६ ॥
कभी न डूबा क्षमा-धर्मसे,
भारतका वह सच्चा धर्म ।
डूबा, जब भ्रमसे था इसने
पहना कायरताका वर्म ॥
भक्तराज प्रह्लाद क्षमाके
परम मनोहर थे आदर्श ।
जिनसे धर्म बचा था, जो खुद
जीत चुके थे हर्षामर्ष' ॥ ७ ॥
बोले जब हँसकर यों ब्राह्मण,
कहने लगे दूसरे लोग—
'आप जानते हैं तो करिये,
हमें बुरा लगता यह योग' ॥

कहा संतने, 'भाई ! मैंने
नहीं बड़ा कुछ काम किया ।
निज स्वभाव ही बरता मैंने,
इसने भी तो वही किया ॥ ८ ॥
मेरी प्रकृति बचानेकी है,
इसकी डंक मारनेकी ।
मेरी इसे हरानेकी है,
इसकी सदा हारनेकी ॥
क्या इस हिंसकके बदलेमें
मैं भी हिंसक बन जाऊँ ?
क्या अपना कर्त्तव्य भूलकर
प्रतिहिंसामें सन जाऊँ ॥ ९ ॥
जितनी बार डंक मारेगा,
उतनी बार बचाऊँगा ।
आखिर अपने क्षमा-धर्मसे
निश्चय इसे हराऊँगा ॥
संतोंके दर्शन-स्पर्शन-
भाषण दुर्लभ जगतीतलमें ।

वृश्चिक छूट गया पापोंसे
संत-मिलनसे उस पलमें ॥१०॥
खुले ज्ञानके नेत्र, जन्म-
जन्मांतरकी स्मृति हो आई।
छूटा दुष्ट स्वभाव, सरलता,
शुचिता सब ही तो आई॥
संत-चरणमें लिपट गया
वह करनेको निज पावन तन।
छूट गया भवव्याधि विषमसे,
हुआ रुचिर वह भी हरि-जन ॥११॥
जब हिंसक जड़ जंतु क्षमासे
हो सकते हैं साधु-सुजान।
हो सकते क्यों नहीं मनुज तब,
माने जाते जो सज्ञान!
पढ़कर वृश्चिक और संतका
यह नितांत सुखकर संवाद।
अच्छा लगे मानिये, तज प्रति-
हिंसा-वैर-विवाद-विषाद ॥१२॥



महापुरुष-चरण-वन्दन

(११४) लावनी

सर्व-शिरोमणि विश्व-सभाके,
आत्मोपम विश्वंभरके ।
विजयी नायक जगनायकके,
सच्चे सुहृद चराचरके ॥
सुखद सुधानिधि साधु-कुमुदके,
भास्कर भक्त-कमल-वनके ।
आश्रय दीनोंके, प्रकाश
पथिकोंके, अवलम्बन जनके ॥ १ ॥
लोभी जग-हितके, त्यागी सब
जगके, भोगी भूमाके ।
मोही निर्मोहीके, प्यारे
जीवन बोधमयी माके ॥
तत्पर परम हरण पर-दुखके,
तत्परता-विहीन तनके ।
चतुर खिलाड़ी जग-नाटकके,
चिंतामणि साधक जनके ॥ २ ॥

सफल मार्ग-दर्शक पथभ्रष्टोंके,
आधार अभागोंके ।
विमल विधायक प्रेम-भक्तिके,
उच्च भावके, त्यागोंके ॥
परम प्रचारक प्रभुवाणीके,
ज्ञाता गहरे भावोंके ।
वक्ता, व्याख्याता, विशुद्ध,
उच्छेदक सर्व कुभावोंके ॥ ३ ॥
पथदर्शक निष्कामकर्मके,
चालक अचल सांख्यपथके ।
पालक सत्य-अहिंसा-व्रतके,
घालक नित अपूत पथके ॥
नाशक त्रिविध तापके, पोषक
तपके, तारक भक्तोंके ।
हारक पापोंके, संजीवन-
भेषज विषयासक्तोंके ॥ ४ ॥
पावनकर्ता पतितोंके
पृथ्वीके, प्रेत, पितृ-गणके ।

भूषण भूमंडलके, दूषण
राग-द्वेष रणांगणके ॥
रक्षक अतिदृढ़ सत्य-धर्मके,
भक्षक भव-जंजालोंके ।
तक्षक भोग-रोग, धन-मदके,
व्यापारी सत-लालोंके ॥ ५ ॥
दक्ष दुभाषी 'जन, जन-धन' के,
मुखिया राम-दलालोंके ।
छिपे हुए अज्ञात लोक-निधि
मालिक असली मालोंके ॥
चूड़ामणि दैवीगुण-गणके
परमादर्श महानोंके ।
महिमा वर्णनमें अशक्त तव
विद्या-बल विद्वानोंके ॥ ६ ॥



परिशिष्ट *

हेय (त्याग करने योग्य)

१ सूर्योदयके बाद सोना।

२ दिवा-निद्रा। (दिनमें सोना, वैद्यकके अनुसार ग्रीष्म-ऋतुके दो महीने वर्जित नहीं हैं)

३ कुसङ्गति। (पापाचारी दुष्ट पुरुषोंका सङ्ग)

४ व्यभिचार। (पर-स्त्री या पर-पुरुष-का सङ्ग)

---

* परिशिष्ट, कई शास्त्रग्रन्थों, भक्तों और महा-पुरुषोंके वाक्योंके आधारपर लिखा जाकर कई शास्त्रज्ञाता विद्वान् पण्डितोंकी सम्मतिसे प्रकाशित किया गया है। यह एक तरहकी हेय (त्याग करने योग्य), उपादेय (ग्रहण करने योग्य) एवं ज्ञेय (जानने योग्य) विषयों-की संक्षिप्त सूची है। इसमेंसे जो सज्जन जितना त्यागने, जानने और ग्रहण करनेमें समर्थ हों उतना ही उनके लिये शुभ है।

५ द्यूत । (जूआ)

६ अभक्ष्य-भोजन । (मांस, मद्य, चर्वी-मिश्रित घृत, विदेशी चीनी या अन्यान्य ऐसी ही अखाद्य वस्तुएँ एवं लहसुन, प्याज आदि)

७ बरफ, सोडा, लेमोनेड आदि ।

८ डाक्टरी दवाइयाँ ।

९ मादक द्रव्य । (नशीली चीजें, जैसे अफीम, कोकेन, सुल्फा, गाँजा, भाँग, तंबाकू, सिगरेट, बीड़ी आदि)

१० विदेशी वस्त्र और हिन्दुस्थानकी मिलोंमें बने चर्वी लगे हुए वस्त्र ।

११ लाक्षा । (चपड़ी, लाह)

१२ नील । (नील या नील-मिश्रित कोई रंग, नील लगा हुआ वस्त्र)

१३ चमड़ा । (जूते या अन्य चीजें)

१४ चर्वीमिश्रित साबुन ।

१५ एसेंस, क्रीम आदि । (देशी या विलायती स्पिरिट या चर्वी मिले हुए सुगन्धित द्रव्य)

१६ ताश-चौपड़ और शतरंज आदि।

१७ बुरे नाटक, सिनेमा और ख्याल आदि देखना।

१८ विलासिता। (शौकीनी, लोगोंको अपनी सुन्दरता दिखलानेके लिये चटक-मटकसे रहना, फैशनका गुलाम बने रहना, टेढ़े बाल रखना, पटिये जमाना, ऐशो-आराममें लगे रहना)

१९ निर्दयता। (जीवोंको कष्टमें पड़े हुए देखकर भी करुणाका सञ्चार न होना, दीन-दुखियोंको कष्ट पहुँचाना)

२० दर्प। (घमण्ड)

२१ चटोरपन। (जीभके स्वादके लिये धर्म और वैद्यकशास्त्रके विरुद्ध अपनी प्रकृतिके प्रतिकूल पदार्थोंके खानेके लिये ललचाना)

२२ गंदा साहित्य। (मनकी वृत्तियोंको बिगाड़नेवाले गंदे उपन्यास, नाटक और काव्य आदि पढ़ना)

२३ चाटुकारिता। (स्वार्थवश किसीकी खुशामद करना)

२४ ब्रह्मचर्य-भङ्ग। (स्त्रीके रजस्वला होनेके दिनसे सोलह रात्रि ऋतुकाल है। इनमेंसे पहली चार रात्रियाँ और ग्यारहवीं तथा तेरहवीं रात्रि सर्वथा वर्जित हैं। बाकी दस रात्रियोंमेंसे अमावस्या, अष्टमी, पूर्णिमा एवं चतुर्दशी तथा व्रत-उद्यापन या पर्वादिके दिन टालकर बाकी रात्रियोंमेंसे सन्तानोत्पत्तिके अभिप्रायसे केवल दो ही रात्रिमात्र अपनी विवाहिता धर्मपत्नीके साथ जो गृहस्थ सहवास करता है वह ब्रह्मचारीके समान माना गया है। गृहस्थीके लिये इससे अधिक स्त्री-संगम करना तथा अन्य तीनों आश्रमोंमें किसी तरह भी वीर्यपात करना ब्रह्मचर्य-भङ्ग करना है)

२५ अष्ट-मैथुन। (स्त्री-सम्बन्धी बातें सुनना, स्मरण करना, कहना, स्त्रीको देखना, मिलनेका प्रयत्न करना, इशारा करना, एकान्तमें मिलना और अंग-स्पर्श करना)

२६ **भय**। (सत्कार्यमें भी लोकभय, राजभय आदि या भूत-प्रेतादिका मिथ्या भय)

२७ **असूया**। (दूसरेके गुणोंमें दोषारोपण करना)

२८ **पर-दोष-दर्शन**। (दूसरेमें केवल दोष ही देखना)

२९ **छिद्रान्वेषण**। (दूसरेके छिद्र (ऐब) ढूँढ़ना)

३० **विषाद**। (सर्वदा चिन्ताग्रस्त रहना)

३१ **धूर्त्तता**। (छल-कपटादि)

३२ **कृपणता**। (शक्ति होते हुए भी तन, मन, वचन और धनका सदुपयोग न करना)

३३ **अपव्यय**। (बिना विचारे अनावश्यक धन खर्च करना)

३४ **सहसा कार्य**। (बिना विचारे जल्दबाजी-से चाहे जैसा कार्य कर बैठना)

३५ **आलस्य**। (शक्ति होनेपर भी अवश्य-कर्तव्यमें उत्साह न करना)

३६ अशुभ कर्म-गोपन। (तन, मन, वचनसे बने हुए किसी भी बुरे कर्मको छिपाना)

३७ शुभ कर्म-प्रकाश। (तन, मन, वचनसे किसी समय भी बने हुए अच्छे कर्मोंका प्रकाश करना)

३८ अहसान करना। (किसी समय अपनेसे किसीका कुछ भला बन पड़ा हो उसे बारंबार उस पुरुषको सुना-सुनाकर उसपर रोब जमाना)

३९ अशुश्रूषा। (सेवाभाव न होना)

४० पाप-कर्म करनेमें भी प्रारब्धको हेतु समझना। (मेरे भाग्यमें चोरी-जारी आदि पाप-कर्म करने लिखे हैं, इसीसे मैं पाप करता हूँ—ऐसी भ्रममूलक बुद्धि)

४१ लोभ। (अनुचित धन-लालसा, किसी तरह भी धन मिले, धर्माधर्मका कोई विचार नहीं)

४२ क्रोध। (किसी बातके मनके प्रतिकूल होते ही भड़क उठना)

४३ द्वेष । (मन और इन्द्रियोंके प्रतिकूल विषयोंसे द्रोह करना)

४४ संशय । (ईश्वरके अस्तित्वमें, शास्त्र और गुरुवचनोंमें सन्देह)

४५ कृतघ्नता । (किसीका अपने ऊपर किया हुआ उपकार न मानना)

४६ हठकारिता । (किसी भी बातपर अनुचित दुराग्रह (जिद्द) करना)

४७ क्रूरता । (तन, मन, वचनसे किसीको आघात पहुँचानेमें न हिचकना)

४८ प्रमाद । (कर्त्तव्यपालनमें असावधानी)

४९ चपलता । (फालतू बातें सोचना, कहना या व्यर्थ काम करना)

५० वक्रता । (मनमें, बोलीमें या चालमें टेढ़ापन)

५१ ईर्ष्या । (दूसरेकी उन्नति देखकर जलना)

५२ अपवित्रता । (बाहर और भीतरकी अशुद्धि)

५३ चोरी। (मनसे छिपाना, वाणीसे अयथार्थ कहना और शरीरसे दूसरेकी वस्तु उसकी बिना जानकारीमें ग्रहण करना)

५४ निर्लज्जता। (शास्त्रविरुद्ध कार्योंमें भी लज्जित न होना)

५५ दम्भ। (पाखण्ड, दिखौवापन, बगुला-भक्ति, धर्मध्वजीपन)

५६ पर-आजीविका-विनाश । (दूसरेकी न्यायसंगत आजीविका नाश करना)

५७ शत्रुता। (मनसे वैर करना, शरीर या वाणीसे वैर लेना)

५८ भूतोपासना। (मारवाड़-प्रान्तके रिगतिया, पीर, मावली आदि तथा अन्य प्रान्तोंके इसी श्रेणीके बाघोबा, लकड़हा, चिथड़हा आदि एवं भूत, प्रेत, यक्षिणी, पिशाचिनी आदिकी पूजा करना, मानसिक भेंट (जात) बोलना, स्तुति करना)

५९ विश्वासघात। (किसीको विश्वास देकर पलट जाना)

६० बड़ाई । (अपनी बड़ाई चाहना, सुनकर प्रसन्न होना)

६१ असत्यभाषण । (झूठ बोलना)

६२ परनिन्दा । (परायी निन्दा करना)

६३ कटु वचन । (कड़ुआ बोलना, गाली-गलौज करना आदि)

६४ चुगली ।

६५ वाचालता । (व्यर्थ बकवाद करना, फालतू लोक-चर्चा करना)

६६ मिथ्या-आश्वासन । (झूठा भरोसा देना)

६७ शपथ खाना या दिलवाना ।

६८ शाप या वरदान देना ।

६९ नास्तिकता । (ईश्वरको और वेदोंको न मानना)

७० संकीर्णता । (हृदयका ओछापन)

७१ वर्णाश्रमधर्म-प्रतिकूलता । (अपने-अपने वर्ण और आश्रमके विरुद्ध आचरण करना)

७२ ईश्वर-गुरु-शास्त्र-निन्दा । (परमात्मा,

ईश्वरावतार, गुरु, वेद और शास्त्रोंकी निन्दा करना या सुनना)

७३ **अभिमान** । (धन, जन, जाति, विद्या, रूप, अधिकार, बल आदिका अहंकार)

७४ **मोह** । (मूढ़ता)

७५ **तृष्णा** । (असन्तोष, किसी भी अवस्थामें इच्छाका पूरा न होना)

७६ **फलकामना** । (प्रत्येक कार्यमें फलकी कामना)

७७ **वासना** । (सूक्ष्म कामना)

७८ **विषयचिन्तन** । (मनसे विषयोंका स्मरण करना)

७९ **संकल्प-विकल्प** । (विषयात्मक स्फुरणा)

८० **देहात्मबोध** । (शरीर ही आत्मा है, शरीर छूटते ही मैं मर जाऊँगा आदि ऐसी बुद्धि)

८१ **आसक्ति** । (विषयोंके प्रति अनुराग)

८२ **ममता** । (विषयोंमें ममत्वबुद्धि । धन, जन, परिवार और शरीर आदिको अपना समझना)

८३ कर्तृत्वाभिमान। (तन, मन, वचनसे होनेवाले प्रत्येक कार्यमें 'मैं कर्ता हूँ' ऐसा अभिमान)

८४ जगत्के अस्तित्वमें आस्था। (जगत्को इसी रूपमें सच्चा समझना)

उपादेय

१ सन्ध्या। (प्रत्येक यज्ञोपवीतधारी द्विजको यथासम्भव दोनों काल अवश्य करनी चाहिये)

२ तर्पण।

३ श्राद्ध।

४ अग्निहोत्र।

५ बलिवैश्वदेव।*

६ गुरुजन-वन्दन। (माता, पिता, ताऊ, चाचा, बड़ा भाई, भौजाई आदि जो घरमें अपनेसे बड़े हों तथा गुरु, ब्राह्मण, इन सबके चरणोंमें प्रतिदिन नियमपूर्वक प्रणाम करना)

---

* बलिवैश्वदेवकी विधिके छपे हुए पन्ने गीताप्रेस, गोरखपुरमें मिल सकते हैं।

७ भगवन्नाम-जप । (भगवान्‌के नामके समान और कोई पदार्थ नहीं । जपकी स्मृतियों तथा अन्य शास्त्रोंमें बड़ी प्रशंसा की गयी है । **प्रेमपूर्वक भगवन्नाम-जप करनेसे सब कुछ हो सकता है । कलियुगमें तो सारे भवरोगों-को मिटानेके लिये यही एकमात्र परम औषध है** । भगवन्नाम-जप यथासम्भव निरन्तर, गुप्त, अर्थसहित अर्थात् भगवान्‌का ध्यान करते हुए निष्कामभावसे किया जाना चाहिये)

८ भगवन्नाम-कीर्त्तन । (भगवान्‌के परम-पावन नाम और गुणोंका कीर्तन बड़े प्रेमके साथ लोकलज्जा छोड़कर करना चाहिये)

९ स्वाध्याय । (वेद, उपनिषद्, श्रीमद्भागवत, श्रीगीताजी आदि परमार्थ-ग्रन्थोंका नित्य पढ़ना)

१० पवित्रता । (सत्यतापूर्वक शुद्ध व्यवहारसे द्रव्यकी और उसके अन्नसे आहारकी तथा यथायोग्य बर्तावसे आचरणोंकी और जल, मिट्टी आदिसे शरीरकी शुद्धिको तो बाहरी पवित्रता कहते हैं और

राग-द्वेष, कपटादि विकारोंका नाश होकर अन्तः-करणका स्वच्छ और शुद्ध हो जाना भीतरकी पवित्रता कहलाती है)

११ अहिंसा। (तन-मन-वचनसे किसीको किसी प्रकारसे भी कष्ट न पहुँचाना)

१२ मित-हित-सत्य-भाषण। (जैसा कुछ सुना या समझा गया हो वैसा ही मधुर, हितकारी और थोड़े-से शब्दोंमें कहना)

१३ सत्सङ्ग। (संत, भक्त और महात्माओं-का सङ्ग करना)

१४ देव-पूजा। (श्रुति, स्मृति, पुराण-प्रतिपादित देवताओंकी निष्कामभावसे यथायोग्य पूजा करना)

१५ तप। (अपने धर्म-पालनमें कष्ट सहना)

१६ यज्ञ। (श्रुतियोंके अतिरिक्त श्रीमद्भगवद्-गीतामें बारह प्रकारके यज्ञ वर्णित हैं, उनका निष्कामभावसे यथाधिकार यथायोग्य आचरण करना)

१७ दान । (बदला पानेकी आशा न रखते हुए धन, मान, बड़ाई या स्वर्गादिकी कामनासे रहित, बिना किसी क्लेशके, केवल दान देना ही कर्तव्य समझकर, जहाँ, जिस समय, जिसको, जिस वस्तुकी आवश्यकता हो, वहाँ, उस समय, उसको, वह वस्तु देना तथा गुरु या शुद्धाचारी विद्वान् ब्राह्मणोंको श्रद्धासहित जो कुछ भी दिया जाय सो सात्त्विक दान है । दान जितना गुप्त रक्खा जाय उतना ही उत्तम है । अनुकम्पा-दानमें अन्न, जल, वस्त्र, औषध, आश्रय आदि देनेमें जाति-पाँतिका विचार नहीं करना चाहिये)

१८ ब्रह्मचर्य । (परस्त्रीमें आठ प्रकारके मैथुनों-का त्याग और निज स्त्रीके साथ शास्त्रानुकूल व्यवहार करते हुए, ब्रह्मचर्य-पालन करना चाहिये । ब्रह्मचारी, वानप्रस्थ और संन्यासीको तो अखण्ड ब्रह्मचारी रहना चाहिये । परमार्थके साधकको भी यथासाध्य ब्रह्मचर्यका पालन (गृहस्थ होनेपर) करना चाहिये)

१९ सरलता । (तन-मन-वचनसे सीधापन)

२० **नम्रता** । (स्वाभाविक विनययुक्त बर्ताव)

२१ **आस्तिकता** । (ईश्वरके अस्तित्वमें विश्वास)

२२ **दया** । (पीड़ितोंके प्रति करुणभाव)

२३ **क्षमा** । (अपना अपराध करनेवालेको भी दण्डित न करना)

२४ **अद्रोह** । (द्वेपियोंमें भी द्वेप-बुद्धिका न होना)

२५ **मैत्री** । (सबके साथ मित्रभाव) ।

२६ **सुहृदता** । (बिना ही स्वार्थके सबकी भलाई करना)

२७ **प्रेम** । (समस्त विश्वमें आत्मोपम प्रेम)

२८ **मनोनिग्रह** । (मनका वशमें करना)

२९. **इन्द्रियदमन** । (इन्द्रियोंका वशमें करना)

३० **निर्भयता** । (धर्मपथपर आरूढ रहकर निडर होना)

३१ निष्कपटता । (तन, मन, वचनसे छल न करना)

३२ निर्लोभता । (अनुचित धन-लालसाका अभाव)

३३ उदारता । (तन, मन, वचन और धनका सदुपयोग करनेके लिये सदा तैयार रहना)

३४ मितव्यय । (आवश्यकता होनेपर ही धन व्यय करना)

३५ लज्जा । (शास्त्रवर्जित कर्मोंमें लज्जा)

३६ धैर्य । (बड़ी-से-बड़ी विपत्तिमें भी सत्पथसे न हटना)

३७ अभिमानशून्यता । (अहङ्कार और मदका सर्वथा अभाव)

३८ उत्साह । (कर्तव्यकर्ममें उत्साह)

३९ प्रसन्नता । (नित्य प्रसन्न रहना)

४० अनसूया । (दूसरोंमें दोष न देखना)

४१ प्रमादशून्यता । (कर्तव्यपालनमें तत्परता)

४२ मित-हित-शुद्धाहार। (अपनी प्रकृतिके अनुकूल, धर्म और वैद्यकशास्त्रसम्मत शुद्ध सात्त्विक हितकारी आहार करना चाहिये। मांस, मद्यादि अभक्ष्य पदार्थोंके अतिरिक्त मिर्च, राई, गर्म मसाले, अधिक खट्टा, हींग, बासी या दुर्गन्धयुक्त पदार्थ न खाने चाहिये। भूखके अनुसार उदरके दो भाग अन्नसे और एक भाग जलसे भरकर, एक भाग वायुके सरलतासे आने-जानेके लिये खाली रखना चाहिये)

४३ अतिथि-सेवा। (घरपर आये हुए अतिथिका यथायोग्य सत्कार करना चाहिये)

४४ सेवा। (निष्कामभावसे जीवमात्रकी, धर्मकी, देशकी, जातिकी, कुटुम्बकी या व्यक्ति-विशेषकी यथायोग्य सेवा करना)

४५ ईश्वरभक्ति। (सच्चे मनसे भगवद्भक्ति करना)

४६ गुरुभक्ति । (सद्गुरुकी सेवा और आज्ञापालन)

४७ श्रद्धा। (शास्त्र तथा गुरुवचनोंमें प्रत्यक्षवत् विश्वास)

४८ कुतर्काभाव। (कुतर्क न करना)

४९ उपरति। (उपरामता, विषयोंसे मनका सम्यक् प्रकारसे हट जाना)

५० तितिक्षा। (सुख-दुःख, शीत-उष्ण आदि द्वन्द्व सहन करना)

५१ सन्तोष। (तृष्णाका सर्वथा अभाव)

५२ समाधान। (अन्तःकरणमें संशय और विक्षेपका अभाव)

५३ अपरिग्रह। (ममत्वबुद्धिसे संग्रह न करना)

५४ त्याग। (आसक्ति, फल, कामना और कर्त्तापनके अभिमानका त्याग)

५५ प्राणायाम। (प्राणोंको रोकनेका अभ्यास)

५६ शान्ति। (वासनारहित अन्तःकरणकी नित्य प्रसन्नता)

५७ भगवत्-शरण । (परमात्माको ही एक-मात्र आश्रय समझकर सर्वतोभावसे उसीकी शरण जाना)

५८ ध्यान । (अपने-अपने अधिकारानुसार साकार या निराकार परमात्माके ध्यानमें मग्न रहना)

५९ निष्कामभाव । (किसी भी कर्म वा उपासनामें फलकामना न होना)

६० वर्णाश्रमधर्म-पालन । (अपने-अपने वर्ण और आश्रमके कर्तव्य कर्मोंका निष्कामभावसे यथायोग्य आचरण)

६१ वैराग्य । (इस लोकके साधारण भोगसे लेकर ब्रह्मलोकतकके समस्त भोगोंसे मनका सर्वथा हट जाना)

६२ समता । (लाभ-हानि, जय-पराजय, मान-अपमान और सुख-दुःखादिमें सर्वत्र सम-भावापन्न होना)

६३ समदर्शिता । (छोटे-बड़े सभी जीवोंमें सर्वत्र एक परमात्माको समानभावसे स्थित देखना)

६४ विवेक । (सत् (परमात्मा) और असत् (जगत्) का यथार्थ ज्ञान)

ज्ञेय (जाननेयोग्य)

एक परमात्मा

जिसे जाननेके लिये ग्यारह आध्यात्मिक प्रश्न । इन प्रश्नोंको निरन्तर अपने अन्तःकरणमें करते रहना चाहिये और इनका उत्तर उसीसे लेना चाहिये ।

१ मैं कौन हूँ ? २ कहाँ हूँ ? ३ क्यों आया हूँ ? ४ कहाँ जाऊँगा ? ५ कहाँ जा रहा हूँ ? ६ कहाँ जाना चाहिये ? ७ क्या कर रहा हूँ ? ८ क्यों कर रहा हूँ ? ९ क्या करना चाहिये ? १० कौन शत्रु है ? और ११ कौन मित्र है ?



श्रीहरिः

गीताप्रेस, गोरखपुरकी पुस्तक-सूची

१–गीता–[श्रीशांकरभाष्यका सरल हिन्दी-अनुवाद] इसमें मूल, भाष्य और भाष्यके सामने ही अर्थ दिया गया है। सा० २२×२९ आठपेजी, पृ० ५०४, ३ चित्र, मू० २॥), बढ़िया जिल्द २॥)

२–गीता–मूल, पदच्छेद, अन्वय, साधारण भाषाटीका, टिप्पणी, प्रधान और सूक्ष्म विषय एवं त्यागसे भगवत्-प्राप्तिसहित, पृ० ५७०, ४ चित्र, मू० १।)

३–गीता–गुजराती-टीका, यह हिन्दीकी १।) वाली गीताकी तरह छापी गयी है। पृ० ५७०, मूल्य १।)

४–गीता–मराठी-टीका, हिन्दीकी १।) वाली गीताके समान, पृष्ठ ५७०, बहुरंगे ४ चित्र, मू० १।)

५–गीता–बंगला-टीका, हिन्दीकी ॥।=) वाली गीताकी तरह, मूल्य १) सजिल्द १।)

६–गीता–प्रायः सभी विषय १।) वालीके समान। विशेषता यह है कि श्लोकोंके सिरेपर भावार्थ छपा हुआ है, साइज और टाइप कुछ छोटे, पृष्ठ ४६८, मू० ॥≋), सजिल्द ॥।=)

७–गीता–श्लोक, साधारण भाषाटीका, टिप्पणी, प्रधान विषय और त्यागसे भगवत्-प्राप्ति नामक निबन्धसहित साइज मझोला, मोटा टाइप, पृष्ठ ३३२, सचित्र, मू० ॥), स० ॥≋)

८–गीता–मूल, मोटे अक्षर, सचित्र ।–) सजिल्द ।≋)

९–गीता–भाषा, केवल भाषा, १ चित्र, मू० ।) सजिल्द ।=)

१०–गीता–साधारण भाषाटीका, सभी विषय ॥) वालीके समान, पृष्ठ ३५२, मू० =)॥ स० ≋)॥

११–गीता–मूल, विष्णुसहस्रनामसहित स०, मू० =)

१२–गीता–मूल, ताबीजी, साइज २×२॥ इंच मू० =)

१३–गीता–७॥×१० इंच साइजके दो पन्नोंमें मू० –)

१४–गीता-सूची–(Gita-List) संसारकी अनुमान २००० गीताओंका परिचय, मू० ॥)

१५–गीताडायरी सन् १९३६ की मू० ।) सजिल्द ।–)

१६–श्रीविष्णुपुराण–मूल और अनुवादसहित, छपाई बहुत सुन्दर और साफ, पृष्ठ ५४८, चित्र ८, मू० साधारण जिल्द २॥), बढ़िया २॥।)

१७–अध्यात्मरामायण–मूल और अर्थसहित, पृष्ठ ४०२, चित्र ८, मू० १।॥), बढ़िया जिल्द २)

१८–प्रेम-योग–सचित्र, पृष्ठ ४२०, मू० १।) स० १॥)

१९–श्रीतुकाराम-चरित्र–९ सादे चित्र, पृष्ठ ६९४, मूल्य १≋) सजिल्द १॥)

२०–भागवतरत्न प्रह्लाद–३ रंगीन, ५ सादे चित्रों-सहित, पृष्ठ ३४०, मूल्य १) सजिल्द १।)

२१–विनय-पत्रिका–सरल हिन्दीभावार्थसहित, पृष्ठ ४५०, ६ चित्र, मू० १) सजिल्द १।)

२२–गीतावली–सटीक, पृष्ठ ४६०, ८ चित्र मू० १) सजिल्द १।)

२३–श्रीकृष्ण-विज्ञान–श्रीमद्भगवद्गीताका मूल-सहित हिन्दी-पद्यानुवाद मू० ।॥), सजिल्द १)

२४–श्रीश्रीचैतन्य-चरितावली—(खं० १, लेखक–श्रीप्रभुदत्तजी ब्रह्मचारी) ६ रंगीन चित्र, मू० ।॥=) सजिल्द १=)

२५–श्रीश्रीचैतन्य-चरितावली (खण्ड २) कीर्तन-के रंगमें रँगे महाप्रभुकी लीलाएँ, अधमोंके उद्धारकी घटनाएँ, अद्वैत, पुण्डरीक, हरिदास आदि भक्तोंके चरित्रोंका वर्णन है, पृ० ४५०, चित्र ९, मू० १=) सजिल्द १।=)

२६–श्रीश्रीचैतन्य-चरितावली–(खण्ड ३) पृष्ठ ३८४, चित्र १०, मू० १) सजिल्द १।)

२७–श्रीश्रीचैतन्य-चरितावली—(खण्ड ४) पृ० २२४, चित्र १४, मू० ॥=) सजिल्द ।॥=)

२८–श्रीश्रीचैतन्य-चरितावली—(खण्ड ५) पृ० २८०, चित्र १०, मू० ।।।) सजिल्द १)

२९–मुमुक्षुसर्वस्वसार–सटीक, पृष्ठ ४१४, मूल्य ।।।–) सजिल्द १–)

३०–तत्त्व-चिन्तामणि [भाग १]–सचित्र, ले०–श्रीजयदयालजी गोयन्दका, पृष्ठ ३५०, मू० ।।=) सजिल्द ।।।–)

३१–तत्त्व-चिन्तामणि [भाग २] सचित्र, ले०–श्रीजयदयालजी गोयन्दका पृष्ठ ६३२, मू० प्रचारार्थ केवल ।।।=) स० १=)

३२–श्रीज्ञानेश्वर-चरित्र और ग्रन्थ-विवेचन–इस ग्रन्थमें आपके चरित्रके साथ-साथ आपके उपदेशोंका भी अमूल्य संग्रह है। पृष्ठ ३५६, १ चित्र, मूल्य ।।।–)

३३–श्रीमद्भागवतान्तर्गत एकादशस्कन्ध–सचित्र, सटीक, पृष्ठ ४२० मू० ।।।) सजिल्द १)

३४–देवर्षि नारद–पृष्ठ २४०, ५ चित्र, मू० ।।।) सजिल्द १)

३५–विष्णुसहस्रनाम–शांकरभाष्य, हिन्दी-अनुवाद-सहित, सचित्र, अनु०–श्रीभोले-बाबाजी, पृष्ठ लगभग २७५, मू० ।।=)

३६–नैवेद्य—पृष्ठ ३५०, मूल्य ।।=) सजिल्द ।।।–)

३७–श्रुति-रत्नावली—खास-खास श्रुतियोंका सार्थ संग्रह, पृष्ठ २८४, मू० ॥)
३८–स्तोत्र-रत्नावली–सटीक, सचित्र, मूल्य ॥)
३९–दिनचर्या–सचित्र, इसमें उठनेसे सोनेतककी क्रियाएँ—योग, भक्ति, ब्रह्मचर्य, आहार, सदाचार आदि अनेक विषय दिये गये हैं। पृष्ठ २३०, मू० ॥)
४०–तुलसीदल—पृष्ठ २६४, मू० ॥) सजिल्द ॥≶)
४१–श्रीएकनाथ-चरित्र—(सचित्र) मू० ॥)
४२–विवेक-चूडामणि–(सानुवाद, सचित्र) पृ० २२५, मू० ।≶), सजिल्द ॥=)
४३–श्रीरामकृष्ण परमहंस–(सचित्र) पृष्ठ २५०, ३ चित्र, मू० ।≶)
४४–भक्त-भारती—७ चित्र, मूल्य ।≶) स० ॥=)
४५–ईशावास्योपनिषद्–सानुवाद शाङ्करभाष्यसहित, सचित्र, पृष्ठ ५०, मू० ≶)
४६–केनोपनिषद्–सानुवाद शाङ्करभाष्यसहित सचित्र पृष्ठ १४६, मू० ॥)
४७–कठोपनिषद्–सानुवाद शाङ्करभाष्यसहित सचित्र पृष्ठ १७२, मू० ॥–)
४८–मुण्डकोपनिषद्–सानुवाद शाङ्करभाष्यसहित, सचित्र, पृष्ठ १३२, मू० ।≶)

४९-प्रश्नोपनिषद्-सानुवाद शाङ्करभाष्यसहित
सचित्र पृष्ठ १३०, मू० ।≋)
उपरोक्त पाँचों उपनिषद् एक जिल्दमें
सजिल्द (उपनिषद्-भाष्य खण्ड १) मू० २।-)
५०-गीतामें भक्तियोग-पृष्ठ-संख्या १०८,२ चित्र ।-)
५१-भक्त बालक—पृष्ठ ८०, ५ चित्र, मू० ।-)
५२-भक्त नारी—पृष्ठ ८०, ६ चित्र, मू० ।-)
५३-भक्त पञ्चरत्न—पृष्ठ ९८, ६ चित्र, मू० ।-)
५४-आदर्श भक्त—पृष्ठ १०७, ७ चित्र, मू० ।-)
५५-भक्त सप्तरत्न—पृष्ठ १०६, ७ चित्र, मू० ।-)
५६-भक्त-चन्द्रिका—पृष्ठ ९६, ७ चित्र, मू० ।-)
५७-भक्त-कुसुम—पृष्ठ ९१, ६ चित्र, मू० ।-)
५८-प्रेमी भक्त—पृष्ठ १०३, ७ चित्र, मू० ।-)
५९-प्रेम-दर्शन-नारदरचित भक्तिसूत्रकी विस्तृत
टीका, पृष्ठ २००, मूल्य ।-)
६०-तत्त्व-चिन्तामणि [भाग १] छोटे आकारका
संस्करण, पृष्ठ ४०० से ऊपर मू० ।-)स० ।=)
६१-यूरोपकी भक्त स्त्रियाँ—पृष्ठ ९२, ३ चित्र ।)
६२-व्रजकी झाँकी—(५० चित्र) व्रजका वर्णन मू०।)
६३-श्रीबदरीकेदारकी झाँकी-पृष्ठ११२, ६चित्र मू०।)
६४-परमार्थ-पत्रावली-पृष्ठ १४४, मू० ।)

६५—माता—श्रीअरविन्दकी अंग्रेजी पुस्तक (Mother) का हिन्दी-अनुवाद, मूल्य ।)
६६—श्रुतिकी टेर—(सचित्र) ले०—श्रीभोलेबाबाजी ।)
६७—ज्ञानयोग पृष्ठ १२०, मू० ।)
६८—प्रबोध-सुधाकर— सानुवाद, सचित्र, पृष्ठ ८०, मू० ≡)॥
६९—मानव-धर्म—(धर्मका वर्णन) मूल्य ≡)
७०—गीता-निबन्धावली— मू० =)॥
७१—साधन-पथ—(साधनकी बातें) मूल्य =)॥
७२—वेदान्त-छन्दावली—(कवितामें वेदान्त)मू०=)॥
७३—अपरोक्षानुभूति—सानुवाद, सचित्र, मू० =)॥
७४—मनन-माला—भावुक भक्तोंके कामकी चीज है =)॥
७५—चित्रकूटकी झाँकी—(२२ चित्र)सचित्र वर्णन =)
७६—भजन-संग्रह पाँच भाग ॥=) प्रत्येकका मू० =)
७७—स्त्रीधर्मप्रश्नोत्तरी =)
७८—शतश्लोकी सटीक =)
७९—आनन्दकी लहरें —)॥
८०—सच्चा सुख —)॥
८१—गीतोक्त सांख्ययोग और निष्काम कर्मयोग —)॥
८२—गोविन्द-दामोदर-स्तोत्र —)॥
८३—गोपी-प्रेम —)॥
८४—श्रीमद्भगवद्गीताके कुछ जानने योग्य विषय —)॥
८५—मनुस्मृति दूसरा अध्याय —)॥